डिंगल साहित्य में नारी

लेखक

श्री हनुवंतसिंह देवड़ा

भूमिका

सच्चिदानन्द हीरानन्द वात्स्यायन

गुप्ता बुक एजन्सी, दिल्ली।

प्रकाशक:
कामेश्वर प्रसाद गुप्ता
गुप्ता बुक एजेन्सी,
बिस्सोमल कालोनी
चाँदनी चौक, दिल्ली।

लेखक:
श्री हनुवतसिंह देवड़ा

आवरण पृष्ठ
बृजमोहन आनन्द चित्रकार

मुद्रक:
शिवजी मुद्रणालय,
किनारी बाजार, दिल्ली।

समर्पण

राजस्थान के बलिदानी साहित्य और इतिहास के प्रति जिनके हृदय में विशेष मान है, जिन की स्वर-लहरी में शौर्य एवं ओज स्वयंमेव साकार जान पड़ता है उन्हीं पूज्य श्री बाल-कृष्ण शर्मा 'नवीन' को सादर समर्पित !

लेखक—

कुछ कह दूँ

इस पुस्तक में राजस्थान की उन शूरांगनाओं के समय-समय पर किये गए शौर्य पूर्ण कर्मों का विवेचन है जिन्हें वहाँ के डिंगल भाषी कवियों ने अपनी स्वर-सुरसरी से प्रवाहित कर केवल राजस्थान ही नहीं वरन् भारत के इतिहास को पवित्र एव गौरवान्वित किया है।

आज का विज्ञ पाठक विचारक की मुद्रा में किसी भी रचना को पढ़ता है। पुस्तक कैसी है, यह तो कहना मेरे लिए सम्भव नहीं होगा, परन्तु मुझे अपने प्रयास पर विश्वास है और आशा है, इस पुस्तक से उनको कुछ न कुछ मिलेगा ही। मेरे इस प्रयास के साथ साथ विदेश प्रवास की घड़ियों के पहले हिन्दी के महारथी पूज्य अज्ञेय जी ने अपनी भूमिका जोड़ दी, इसके हेतु मैं उनका आभार किन शब्दों में प्रकट करूँ। साथ ही पूज्य श्री बालकृष्ण शर्मा 'नवीन' ने, जिनके हृदय में राजस्थानी जीवन के प्रति विशेष मान है और इन पंक्तियों के लेखक के प्रति अवर्णनीय स्नेह है, दो शब्द प्रदान कर मुझ पर जो अनुकम्पा की है, उसके हेतु कितना आभार मानूँ—वह तो आभार से भी परे की सामग्री है।

भाई श्री मदन सिंह जी देवड़ा तथा शिवसिंह जी गौड़ ने इस पुस्तक के प्रूफ़ देखने का भरसक प्रयत्न किया है—इसके लिए मैं उनका कृतज्ञ हूँ। फिर भी मैं अपनी अनुपस्थिति के कारण रही त्रुटियों के हेतु पाठकों से क्षमा चाहता हूँ। जिन-जिन ज्ञात और अज्ञात कवियों की कविताओं के विवेचन से यह प्रयास बन सका है, उनका भी मैं अत्यन्त आभारी हूँ।

देव निवास,
अर्जुन नगर,
नयी दिल्ली—३.
दिनांक. १. ७. ५५

गुवन्तसिंह देवड़ा

भूमिका

पिछले कुछ वर्षों से सारे हिन्दी क्षेत्र में जो नवोत्थान हो रहा था उसका प्रभाव उस क्षेत्र की मातृभाषाओं पर पड़ना स्वाभाविक ही था। बल्कि यह भी कहा जा सकता है कि हिन्दी का नवोत्थान वास्तव में मातृभाषाओं की जागृति का ही प्रतिबिम्ब है। स्वाधीनता लाभ के बाद से मातृभाषाओं में विशेष स्फूर्ति देखी जाने लगी। हिन्दी की प्रवृत्ति अधिकाधिक एक व्यापक भारतीय संस्कृति की वाहिका बनने की ओर है, तो मातृभाषाएँ जैसा कि स्वाभाविक ही है, जन जीवन के अंतरंग पहलुओं को सामने लाना चाह रही है।

श्री हनुवंतसिंह देवड़ा ने "डिंगल साहित्य में नारी" शीर्षक से डिंगल भाषा के लोक गीतों का एक संक्षिप्त अध्ययन प्रस्तुत किया है। जिस प्रदेश के गीतों का संकलन उन्होंने किया है, उसकी भूमि वीरता और बलिदानों की घटनाओं से पटी हुई है। ऐसा कौन भारतीय होगा। जिसका बाल्यकाल इस भूमि के आदर्शवाद की गाथाओं से रंजित न होता रहा हो या जिसके अपने जीवनादर्श उनसे प्रभावित न हुए हों? हनुवंतसिंह जी की गद्गद् भावुकता उन बाल्यकालीन प्रभावों को फिर ताज़ा कर देती हैं। आचार के नियम युगातीत नहीं होते और आज

प्रश्न हो सकता है कि सामतकालीन आचार कहाँ तक मान्य हो सकते हैं। लेकिन कुछ मूल नैतिक प्रतिमान भी हैं। जिनका आकर्षण कभी नहीं बदलता या चूकता। लोक साहित्यों में हम इन्हीं की प्रेरणा पहचान सकते हैं और इन्हीं के सहज आग्रह से लोक साहित्यों को उनकी विशेष रसमयता प्राप्त होती है। हनुवतसिंह जी की नैतिक भावनायें सजग हैं।

मेरी शुभ कामनायें उनके साथ हैं।

सच्चिदानन्द हीरानन्द वात्स्यायन

दो शब्द

श्री हनुवंतसिंह जी देवड़ा का मैं अनुग्रहीत हूँ कि उन्होंने यह पुस्तक मुझे दिखलाई। यह पुस्तक हमारे देश के उस भू-भाग के नारी सम्बन्धी विचारों और भावों का संकलन है जिसने हमें सदा प्रेरणा, प्रोत्साहन और प्रचुर कर्मठता का संदेश दिया है। राजस्थान के रजकण में राजपूती भावना जिस प्रकार रम गई है उसे देखकर यह नहीं कहा जा सकता कि वह किसी वर्ग विशेष की भावना है। डिंगल भाषा के प्राचीन और अर्वाचीन कवियों ने नारी के सम्बन्ध में जो कुछ भी कहा है उसे केवल राजपूती आदर्शवाद कह कर टाला नहीं जा सकता।

पत्नी के रूप में नारी का ज्वलंत बलिदान, माता के रूप में उसके द्वारा अपने कोख के जाये का समर्पण, भगिनी के रूप में अपने सहोदर के प्रति उसका उदान्त भाव आदि नारी धर्म सम्बन्धी उदाहरण जो हमें डिंगल साहित्य में मिलते हैं वे हमारे देश की आत्मा और इस देश की मृतिका से संभूत ··· हुए हैं। भारतीय संस्कृति से प्रसृत नारी धर्म सम्बन्धी यह भाव डिंगल साहित्य में बड़े हृदयग्राही रूप में अभिव्यक्त हुआ है।

मैं डिंगल भाषा का पंडित नहीं। मालवी भाषा से परिचय होनेके कारण थोड़े प्रयास से ही मैं डिंगल के अल्किष्ट दोहों को समझ लेता हूँ। मैं डिंगल साहित्य की भाव प्रवणता से इतना अधिक प्रभावित हूँ कि उसका एक एक दोहा मुझे झंकृत कर देता है। देवड़ा जी ने इस ग्रंथ में भी नाथूदान का एक दोहा दिया है पाठक उसे देखें—

पागाँ वाला सूरमा खागाँ कटै जरूर।
बैठ अगन बिच बोलणा साड़ी वाला सूर॥

"पाग बाँधने वाले सूरमा (पागाँ वाला सूरमा) खागाँ, अर्थात् खग से अवश्य ही कटते हैं। पर अग्नि के बीच बैठ कर बोलने का यह महान विदेह मूलक शौर्य तो साड़ी वाली शूर वीरांगनाएँ ही दिखला सकती हैं"। भला इसे पढ़कर कौन है जो उफन न उठे? और पाठकों को इस पुस्तक में अनेक स्थल ऐसे भावों से ओत प्रोत मिलेंगे।

मैं श्री हनुवंतसिंह जी देवड़ा को विनम्रता पूर्वक साधुवाद देता हूँ। उन्होंने यह पुस्तक लिखकर हिन्दी भाषा का उपकार मात्र ही नहीं किया है, हिन्दी के क्षितिज को भी विस्तीर्ण किया है। मुझे विश्वास है कि हिन्दी भाषी जनता इस ग्रंथ का आदर करेगी।

बालकृष्ण शर्मा 'नवीन'

प्रवेश

प्रसिद्ध इतिहासकार कर्नल टॉड के स्वर्णिम शब्दों में "राजस्थान की चप्पा चप्पा भूमि शत् शत् बलिदानी रणबांकुरों के रक्त से सनी हुई है। वहाँ का कण-कण अदम्य उत्साह और शौर्य का प्रेरक है। राजस्थान का एक भी ऐसा राज्य नहीं जहाँ पर थर्मोपायली जैसे युद्ध न हुए हों।" अपनी प्रभुता के मद में दीवाने आक्रमणकारियों का राजस्थान भारती के वर पुत्रों ने छाती खोलकर सामना किया। उस वीर भूमि के तपतपाते धोरों के रजकण में बलिदान बिखरे पड़े हैं। उस भू-भाग के वीरों और वीरांगनाओं का शत् शत् अभिनन्दन इतिहास युगों से कर रहा है। आज भी महाराणा प्रताप के स्वातंत्र्य प्रेम के आगे कोटिश: मस्तक झुक जाते हैं। स्वतन्त्रता प्राप्ति की संघर्षमय घड़ियों में स्वयंसेवक गाते थे—

वह ताज जो तेरा प्यारा मां,
राणा ने जिसको दिया नहीं।
सर्वस्व ही अपना लुटा दिया,
पर मस्तक नीचा किया नहीं॥

स्वातंत्र्य प्रेरणा के स्रोत वीर वर महाराणा प्रताप, दुर्गादास राठौड़, पृथ्वीराज राठौड़, सांगा, बप्पा, जयमल, पत्ता, चूण्डा एवं झाला-मान आदि वीरों और पद्मिनी, करुणावती, कृष्णा, हाड़ी राणी, मीरा आदि वीरांगनाओं की मातृ-भूमि राजस्थान और उसका अमर इतिहास—स्वतंत्र भारत की अपनी धरोहर

है। उसका इतिहास जितना उज्ज्वल है उतना ही प्रकाशमान उसकी अपनी भापा राजस्थानी का समर्थ साहित्य भी है। उस सर्व रस प्रधान, अर्चनीय साहित्य को जिसे वहाँ के लोगों ने अपने हृदय का रक्त मिलाकर युगों से जीवित रखा है उसका अपना और वह भी अनूठा स्थान है। राजस्थानी भापा और उसके साहित्य के बारे में कुछ लोगों की धारणा है कि— राजस्थानी भाषा में सुसाहित्य का अभाव है, उसमें हृदय हिलाने वाला माधुर्य नहीं, वह मृतप्राय है।" ऐसी विचारधारा वाले सज्जन महान भूल करते हैं। राजस्थान के झोंपड़ों में बिखरे उस अमर साहित्य को जो अभी प्रकाश में नहीं आया, प्रकाश में लाकर निष्पक्ष और उदार दृष्टि से उसका निर्णय दिया जाय तो देश और विदेश के प्रति एक बुद्धिमान समालोचक को यह स्वीकार करना पडेगा कि राजस्थानी साहित्य अपने ढग का बेजोड़ है और उसमें पाये जाने वाले कई एक उदाहरण विश्व के इतिहास में ढूँढे नहीं मिलेंगे।

स्वदेश धर्म और मर्यादा के जन्मसिद्ध अधिकारों के हेतु राजस्थान ने जो बलिदान दिया है, वहाँ की जनता ने जो समय-समय पर सघर्ष किये हैं उन्हें वहाँ के साहित्य सेवियों ने अपनी प्रतिभा की ओजस्वी एवं लावण्यमयी अभिव्यक्ति देकर जो अलौकिक काव्य रसायन राष्ट्र को दिया है वह किसी भी स्वतत्र देश के हेतु प्रेरणा की सामग्री एव निर्मल निर्देशन कहाने में समर्थ है। राजस्थान के साहित्यकारों ने अपने खून के कतरे बाँटे हैं। वे लेखनी और तलवार दोनो के धनी रहे हैं। वह ओजस्वी साहित्य जब हमारी आँखों के सामने आता है तो हृदय में जोश एव उमग की बाढ़ सी आ जाती है। मतवाले अमर

शहीदों का वह वर्णन स्वदेश की एकता के हेतु एक बिगुल है जिसके बजने पर सेना रण को प्रस्थान किया करती है।

स्वर्गीय विश्व कवि रवीन्द्रनाथ ठाकुर ने डिंगल के राष्ट्रीय कवि श्री केसरीसिंह जी बारहठ की वीर रस भरी कविताओं को सुनकर ठीक ही कहा था "राजस्थानी गीतों और दोहों में वीरता का जो भाव मिलता है वह अपने ढंग का अनूठा भाव है जिस पर सारा देश गर्व कर सकता है"। स्वर्गीय पाश्चात्य विद्वान सर जार्ज ए० ग्रियर्सन ने राजस्थानी के हेतु अपना मत प्रकट करते हुए लिखा है "राजस्थानी में भांति भांति के साहित्य का अखूट भंडार है जिसे बहुत ही थोड़े लोग जानते हैं। उसका महत्व इतिहास की दृष्टि से बहुत बड़ा है।" स्वर्गीय डाक्टर एल० पी० टैसी टोरी ने लिखा है। "जहाँ जहाँ राजपूतों के शोणित की नदियाँ प्रवाहित हुईं, जहाँ जहाँ वे अमर बलिदान हुए वहाँ-वहाँ राजस्थानी साहित्य फला और फूला।" राजस्थानी भाषा और साहित्य पर प्रत्येक देश और विदेश का निष्पक्ष कलाकार मुग्ध हुआ है। राजस्थान के साहित्यकारों ने यहाँ की चिर-विश्रुत ऐतिहासिक घटनाओं में अपने हृदय का रस घोलकर एक ऐसा रसायन तैयार किया है जो अन्तःकरण और बाह्य जीवन का सही प्रतिपादन करता है। मानवता के हित में हुए सही संघर्षों का विषद वर्णन उस अमर साहित्य में भरा पड़ा है। स्वतंत्रता संग्राम में भी राजस्थान का साहित्यकार सदा सजग रहा। राजस्थान के सपूतों की वे गोपनीय कुर्बानियाँ जिन्हें इतिहास भी नहीं जानता यहाँ के स्थानीय लोक कवियों की स्वर-धारा में जिन भावों में प्रवाहित हुई हैं वे अपने ढंग के बेजोड़ हैं।

राजस्थान का साहित्यकार प्रारम्भ से ही दुर्गा और सरस्वती का पुजारी रहा है। लेखनी और तलवार का धनी रहा है। अकबर का दीन इलाही त्तय मानवता की प्रतीक भारतीय सस्कृति को लग रहा था, उसकी तलवार का पानी सारा भारत जान गया था। पर महाराणा प्रताप स्वतन्त्रता का दीप लिये जगलों की खाक छान रहे थे। अकवर के भरे दरवार में महाराणा की प्रशसा और अकवर को कटु उलाहना देना दुरसा जी आढ़ा जैसे ही राष्ट्रीय कवियों का काम था। वीर कवि ने अकबर को भरे दरवार में फटकारते हुए कहा था—

ओरै अकबरीयाह तेज तिहारो तुरकड़ा !
नम नम सू निसरीयाह राण बिना के राजवी !

अर्थात् हे अकवर ! हे तुरक !! तुम अकबर महान कहाते हो। तुम्हारे तेज के आगे सभी राजे और महाराजे फीके हैं। तुम्हारे एक छत्रधर साम्राज्य है। पर तेरे दभ पर पानी फेरने वाला भी एक व्यक्ति है महाराणा प्रताप। उसने मुगल शासन को अपना मस्तक नहीं झुकाया। तुम्हारे वैभव का प्रवाह उस स्वतन्त्रता के पुजारी को नहीं वहा सका। वह अभी स्वतंत्रता की ज्योति को जलाए हुए है। तू प्रभजन वनकर उस अखंड ज्योति को बुझा नहीं सकेगा।

अकबर घोर अंधार ऊंधांणो हिन्दू अवर।
जागै जुण दातार पौहरै राण प्रतापसी ॥

अर्थात् समस्त हिन्दू समाज अकर्मण्यता का बाना पहनकर घोर निद्रा में सोया हुआ है। अकवर का एक छत्रधर साम्राज्य भारत भूमि पर अधेरे की तरह छाया हुआ है। मानवता सो सी गई है। दानव उसका वध करने को प्रस्तुत है। ऐसे विकट समय

में मात्र महाराणा प्रताप ही स्वतंत्रता की ज्योति जलाकर उस सोए हुए समाज का पहरा दे रहे हैं।

अकबर एकणवार दागल की सारी दुनि।
अण दागल असवार रहियोराण प्रताप सी ॥

सम्राट अकबर! तुमने सभी के घोड़ों को मुगल साम्राज्य की अधीनता के प्रतीक दाग से दाग दिया पर वीरवर महाराणा प्रताप का चेटक आज भी बेदाग है। वह वीर बेदाग चेटक पर सवार है।

अकबर समंद अथाह तें डूबा हिन्दू तुरक ।
मेवाड़ो तिण मांय पोयण फूल प्रताप सी ॥

अकबर! तू समुद्र है और वह भी अथाह। उसमें सभी हिन्दू मुसलमान डूब गये है परन्तु महाराणा प्रताप कमल के फूल की तरह ऊपर तैर रहा है। वीर कवि दुरकाजी के ये सोरठे अकबर के दरबार में सुनाना क्या कोई कम बात है? राजस्थान के साहित्यकारों की कृतियों में यथार्थ सत्य ही उनके काव्य की विशेषता है।

अकबर वस्तुतः महान् था। कवि की उक्त सत्य आलोचना पर वह भटका नहीं। उसने महाराणा को सदा आदर की दृष्टि से देखा। जब महाराणा की मृत्यु हो गई तो अकबर के नेत्र सजल हो उठे। राजस्थान के रत्न सूर्यमल जी, बांकीदास जी केसरसिंह जी, उमरदान जी, मुरारीदान जी, किसनदास चीपा, प्रेमदास, महाराज चतुर सिंह जी आदि वीर और भक्त कवियों की कविताओं में जो भाव संसार निर्मित हुआ है वह राष्ट्र को एक बहुत बड़ी देन है। "राजस्थान कोई एक ऐसा गाँव

हो। राजस्थान के साहित्यकारों ने नारी को सर्वोच्च आसन दिया है जिस मान के हेतु नारी के प्राण आज विह्वल हैं वह उसे पहले से ही प्राप्त है। आत्म-विस्मृति के अभिशाप से यदि वह अपने को पहचानने में असमर्थ हो तो इसमें किसी का क्या दोष।

माया रूपी मायड़ी ओपै जग आधार।
छाया रूप सगतरो शरण आयाँ साधार॥

अर्थात्—हे शक्ति तू स्वयं माया रूप है। समस्त भू मंडल तेरे आधार पर टिका हुआ है। यह विश्व तुम्हारी छाया है। तू शरण में आये मानव को अभयदान देती है। नारी अबला नहीं सबला है। शक्ति रूपेण होकर वह दानव जन का सहार कर सकती है। ससार की कोई भी शक्ति उसका मान मर्दन कर नहीं सकती। नारी की तसवीर में शक्ति रूप छिपा रहता है। जब जब मानवता पर दानवता के काले काले बादल छाते हैं त्रिताप सतप्त मानव समाज जब तड़पने लगता है तब शक्ति अपने कोख से वीर और महान पुरुष पैदा करती है जो भूमि का भार-उतारते हैं। डिंगल साहित्यकारों ने महामाया शक्ति की बड़े ही श्रद्धा युक्त हृदय से वदना की है:—

जगदंब शरणाँ जाण ओहिज मोटो आसरो।
आप तणो आपांण बिरद निभाजै बिसहथ॥

अर्थात्—हे शक्ति इस विश्व में तुम्हें छोड़कर कोई भी असहाय की सहायता करने वाला नहीं है। तुम्हीं उनका आधार हो। जगत की रक्षा करना तुम्हारा उत्तरदायित्व है। सारा ससार तुम्हारी कृपा पर जीता है। हे शक्ति तुम अपने उत्तरदायित्व को निभाती हुई हमारी रक्षा करना।

दुर्गा के शांति रूप का वर्णन करते हुए कवि लिखता है :—

झळके थारी झाळ जामण ने देखूं जरां ।
वणो जद वकराळ जण कांपेरे जोगणी ॥

नारी का क्रांति एवं कांति रूप उक्त पंक्तियों में अंकित है। संस्कृति की दुर्गा पाठ में आई निम्न पंक्तियॉ इन भावों के पहलू समझाने में बहुत सहायक होगी।

"या देवी सर्व भूतेषु क्रांति रूपेण संस्थिता"
"या देवी सर्व भूतेषु कांति रूपेण संस्थिता"

डिंगल साहित्यकारों ने भी नारी को शक्ति मानकर इन्हीं स्वरों में वंदना की है जिसमें उनकी अपनी अनोखी मौलिकता का पुट है। सोरठे का अर्थ है—नारी कांति एवं क्रांति का रूप है। कांति से शक्ति की ललाट दमकती है पर वही शक्ति जब क्रांति का रूप धारण करती है तो समस्त भू भाग कांप उठता है।

सायड़ थूं ही मानखो लड़ आसूडां लार ।
शरणां आया शगतारे अब लीजै उवार

नारी जीवन के प्रति डिंगल कवियों का कितना उदार एवं महान भाव है। नारी मानवता का रूप है। विरह संयोग में निपलने वाले आंसुओं की वह परछाई है। कवि को सामर्थ्य पर पूर्ण विश्वास है तभी तो वह कहता है के शक्ति मैं तुम्हारी शरण आया हुआ हूँ तुम मेरा उद्धार करदो।

वडके डाढ वराह कड़के पीठ कमठ री ॥
धडके नाग धराह वाघ चढै जद त्रिसहय ॥

ऐसी मान्यता है कि यह धरती कछुए, सूअर और शेष नाग

पर टिकी हुई है। शक्ति जब अपने वाहन सिंह पर सवार होती है तो त्रिलोक जान लेता है। शेष नाग का मस्तक घूमने लगता है। और साथ साथ यह धरती भी घूमने लगती है। राजस्थान के लोक गीतों में भी शक्ति का वदन हृदयग्राही है।

ओ तो थेई ओ जोगमाया सा सूधे,
देवरां में समर करो।
ओ तो कूकूंरा पगलां सूं घरें पधार,
देवरां मे समर करो॥
अे तो देयीं कुंवर लाल—
देवरां मे समर करो।
थें तो नव रोजो छोड़ायो म्हारी मांय
देवरां मे समर करो॥
थूं तो जूंझारां री जोरू म्हारी माय,
देवरां में समर करो॥

हे शक्ति तुम सर्व शक्तिमान हो। तुम नारी के रूप में हर घर में आती हो। मगल ही मगल हो जाता है। तुम्हारे वरदान से अन्न, धन, लक्ष्मी सभी प्राप्त हो जाती हैं। वैभव से विहीन घरों में वैभव का संसार वस जाता है। तुमने ही करुणा के रूप में सम्राट अकबर की छाती पर चढ़ कर नोरोज का मेला वन्द करवाया। तुम वीरों का वरण करती हो। प्रियतम के रण में वलि होने पर तुम रणक्षेत्र में कूद पड़ती हो। तुम्हारा व्यक्तित्व महान है। नारी के शक्ति रूप में एटम से भी करोड

गुना अधिक ताकत है। वह उस रूप में प्रलय पर भी विजय प्राप्त कर लेती है।

> शैळ पुत्री ब्रह्मचारिणी चंद्र घटेती माय।
> काळरात्रि महागौरी विरदाली वरदाय॥

ये शक्ति के विभिन्न रूप हैं। जो डिंगल साहित्यकारों ने बताए हैं। कवि कहता है शैलपुत्री, ब्रह्मचारिणी, चन्द्रघटेती, कालरात्रि, महागौरी ये सभी शक्तियाँ अपने विरद को निभाने वाली होती हैं। भक्तों को उनसे मुँह मांगा इनाम मिलता है।

> खिवै भार जगतरो धर सगत घणरंग।
> की वंदण-करां अरे अंतर बोल अपंग॥

धरती को डिंगल साहित्यकारों ने नारी के शक्ति रूप का अंग माना है। कवि धरती को शक्ति का रूप मान कर उसकी क्षमाशीलता के गुण पर गद्‌गद् हो गया है। वह कहता है कि हे धरती तू समस्त मानव संसार का भार अपने पर लेकर संसार का भला बुरा सभी सह रही है। तू क्षमा का साकार रूप है। तेरा वंदन करने को मेरे पास शब्द नहीं। मेरे अन्तःस्तल की भावनायें अपंग सी जान पड़ती है तेरा व्यक्तित्व बहुत बड़ा है। मेरे गाँव राणीवाडा के पास रूपावटी करके एक चारणों का गाँव है। वहाँ धूड़जी चारण रहा करते थे। मेरे गाँव उनका आना जाना होता था। उन्होंने नारी के शक्ति रूप की पुष्टि इस प्रकार की है।

> धूड़ा धूड़ उण कवत में सगत न समझी नार।
> जग मारग आवां जका वा मोटो उणियार॥

उक्त दो पंक्तियों में नारी के प्रति धूडजी की अटूट श्रद्धा टपकती है। वे आत्म सबोधन कर कहते हैं "हे धूड़ा उस कविता को धूल में फेंकदो जिसमें नारी के शक्ति रूप की वंदना न हो। वह जगत जननी है। वही मानव जन्म का श्रोत है। वही एक अद्वितीय मूर्ति है जो जगत जननी कहा सकती है। नारी के शक्ति रूप मीमांसा में डिंगल के कवियों ने जितना लिखा है उस सब पर यदि लिखा जाय तो एक बड़ी पुस्तक तैयार हो सकती है। डिंगल साहित्यकारों का यह निश्चित मत है। कि नारी कैसी भी हो उसमें शक्ति रूप विद्यमान है। अतः वह अभिनन्दनीय एव वंदनीय है—

नार नांह काम रो रूप ही केवल,
पोढण वाला दे सेजां सोवण रो।
कंथ सूं रीस कर, करै घर अंधारो,
कर लटिया बैठ रोवण रो॥
न हेतु कने रमझमती रातों,
जावै जिका उण कामण रो।
साका विदा करै—जिकावा,
तिय चरित उण मालणरो।
जे नार रो हियो खोलो,
देखो नह रूप रगतरो॥
अंधारो न होय आंखियाँ तो,
पूजो नार रूप सगतरो॥

अर्थात्—नारी मात्र भोग विलास की सामग्री नहीं है वरन् सजग एवं सजीव आत्मा है। पतित से पतित, भोग पिपासु, इधर उधर की बातें जोड़ झगड़ा करवाने वाली, और दलाल नारी के हृदय में भी शक्ति के रूप विद्यमान हैं। जब वह अपने शक्ति के रूप को पहचान लेती है तो उसका व्यक्तित्व जगमगा उठता है। भगवान करे हमारे स्वतंत्र भारत की नारियाँ अपने शक्तिरूप को पहचानें।

नारी एक माता के रूप में

डिंगल साहित्य में नारी का सर्वमान्य रूप मां है। मां शब्द की व्याख्या शब्दों का सामान नहीं वरन् अनुभव की सामग्री है। शक्ति रूपिणी मां जब मां बनती है तो उसकी वह तेजोमयी शक्ति अस्त नहीं होती वरन् वह अपने ओजस्वी स्वरों से उस शक्ति रूप के प्रखर प्रकाश को अपनी स्वर रूपी किरणों से अपनी संतान पर फैंकती है। सुना जाता है कि अभिमन्यु ने चक्रव्यूह भेदन अपनी मां की कोख में ही सीख लिया था। डिंगल साहित्य के कवियों ने इसे नारी जीवन का वरदान बताते हुए किन सुन्दर शब्दों में चित्रण किया है :—

अरजण सीख चित हुती सुत ने दी सिखाय।

चकरव्यूरो भेदणो अभीमेन री माय ॥

पुत्र का स्वर्णिम व्यक्तित्व उसकी मां की सीख पर निर्भर है। देवभूमि भारत का वर्तमान एव प्राचीन इतिहास इस बात का साची है। वह ऐसे उज्ज्वल उदाहरणों से भरा पड़ा है अभिमन्यु की वीर गाथा आज कितने नवयुवकों के मृत प्राय. जीवन में नव प्राण फूंकती है। अभिमन्यु का वीर होना उसकी मां की सीख थी। डिंगल के कवि ने उक्त पक्तियों में अनन्य श्रद्धा से वदना की है।

पलने में भूलते हुए बच्चों को राजस्थान की मातायें लोरियों में जो सीख देती हैं वह सीख विश्व की अन्य भाषाओं मे ढूंढे नहीं मिलेगी।

१. पांखां वारै आयो रे वाला,

माता वेण सुणाये यूं।

अर्थात्—जन्म होते ही माता ने अपने लाल को लोरी के स्वर सुनाने प्रारम्भ कर दिए—

२. म्हारी कोख सराई जे-रे वाला,

मैं थन सख री घूटी द्यूं !!

अर्थात् हे बेटा मेरी कोख को तू बड़ा होकर उज्ज्वल करना। मैं तुझे राजस्थान के गहरे पानी की घुटी दे रही हूँ तेरा व्यक्तित्व गहरा, गम्भीर सहनशील एव सर्व प्रतिभाशाली हो।

३. धोला दूध पे कायरता रो,

काळो दाग न लाइजै यूं।

बेटा मेरा दूध उज्ज्वल है। मेरी कोख के इस सफेद दूध पर कायरता का कलक लगाकर कलंकित मत करना। अपने कर्त्तव्य को विस्मृत के सागर मे मत बहाना।

४. तेग दुधारी नाळो काट्यो,

नाळो काटत बोली यूं।

वेर्यां री चतरंगी सैना,

शीश काट घर आइजे यूं॥

अरिदल की प्यासी तलवार से माँ ने बच्चे का नाला काटा और नाला काटते हुए उसने कहा "हे बेटा भारतमाता का मर्दन

करने को जब बैरी चढ़ आवे तो उन सकटमय घड़ियों में तू इस तलवार से बैरी का शीश काट कर घर आना।

मेडी पर चढ थाळ बजायो।
थाल बजावत बोली यूं ।।
चार खूंट चौखुंटी रे वाला।
नोपतड़ी धमकाइजे थूं ।।

पुत्र जन्म की खुशी में माता ने थाली सुनी और उस ध्वनि को सुनकर लोरी में गाकर अपने पुत्र को उसने सुनाया कि हे बेटा जिस प्रकार आज मैं तेरे जन्म की खुशी में यह थाली की आवाज सुन रही हूँ उसी प्रकार तेरे पराक्रम और यश से सारा भूमण्डल गुंजायमान हो। तू विजय की नौबत बजाता हुआ घर लौटे।

कुंओ पूजने फळ से आई।
फळ से बंडता बोली यूं ।।
झांपलिये ढोलां रे ढमके।
आरतड़री उतराईजै थूं ।।

माँ ने पुत्र जन्म के बाद ग्राम के कुएँ की प्रथा के अनुसार पूजा की और फिर ग्राम के खास द्वार पर आई। ग्राम के द्वार जिसे राजस्थान में फलसा कहते हैं उसमें प्रवेश करते हुए बच्चे को कहा—"बेटा तुझे जन्म देना तो सार्थक होगा जब अरिदल को प्रबल प्रभंजन बन छिन्न-भिन्न कर आएगा।

माता बाळ भुजा पर राख्यो ।
भार सहंतो बोली यूं ॥
भारत मा रो भार उतारजे ।
मत न भार वढ़ाइजे थूं ॥

बच्चे को प्यार से माँ ने अपनी भुजा पर रखा और भार सहती हुई उसने लोरी की उक्त पंक्तियें उच्चारित कीं। जिसका अर्थ है 'हे बेटा आज मैं तेरा भार सहन कर रही हूँ पर भारत भूमि तुम हम सब की माँ है उसका तू भार उतारना अर्थात् कर्मवीर बनकर सदा भारत माँ की सेवा में संलग्न रहना ।

माता बालो छात्यां चेप्यो ।
छाती चेपत बोली यूं ॥
दीन हीन दुखियां ने वाला ।
छाती सूं चिपकाइजे थूं ॥

माँ स्नेह से अपने हृदय के टुकड़े को हृदय से चिपकाकर बोली हे बेटा जिस भांति मैं तुमको हृदय से लगा रही हूँ उसी प्रकार तु विश्व के उन दीन हीन मानवों को सीने से चिपकाना जो सड़कों के छोर पर निद्रा देवी की गोद में विश्राम करते हैं, जिनका धरती के हलचल एवं कोलाहल भरे जीवन में कोई नहीं है। जिनके गरम-गरम गोल-गोल आँसू जग के उपहास की सामग्री है ।

सोवन पालणे वालो झूलै ।
झोला देवत बोली यूं ॥
इतरी बार हिलाईजे रे धरती ।
जितरा झोला मै थन द्यूं ॥

पुत्र स्वर्णिम पालने में झूल रहा है । माँ झोले देती हुई कहती है—मेरे लाड़ले जितनी बार मैं तेरे पलने को झोले दूं उतनी बार ही अपने शौर्य से वैरी का मान मर्दन कर दानव की धरती हिला देना । लोरी की अन्तिम पंक्तियों में मातृ हृदय किस अनुपम ढंग से निखर पड़ा है ।

इतरा काम कियां रे म्हारा वाला ।
मैं समझूंली जायो तोय ॥
नीतो, पूत जन्म नै रही बांझणी ।
मंत न दूध लजाई जे थू ॥

[गणपति स्वामी]

हे पुत्र ! यदि तू अपनी माँ द्वारा दी हुई सीख को जीवन में ढाल सका तो मेरे हृदय के शत शत प्रसून गदगद हो उठेंगे । मेरी छाती गौरव से फूल उठेगी । पर यदि दुर्भाग्य वश वैसा न हो सका तो मैं अपने को बाँझ समझ कर दुखी हो जाऊँगी । तू कर्तव्य के मैदान से भाग मत जाना । मेरे दूध को पीकर लज्जित मत करना । माँ के मुख से मुखरित सीख में कितनी आदर्श सीख है । ससार के साहित्य में ढूंढे न मिलेगी ।

राजस्थान की माताओं ने हँसते-हँसते स्वदेश की वेदी पर अपने जायों का बलिदान दिया है । मातृ-भूमि के हेतु हुआ

बलिदान मां के हेतु गौरव की वस्तु है। जन्म दिवस से भी उसे चौगुना हर्ष उस समय होता है जब वह रणक्षेत्र में गए बेटे के बलिदान का संवाद सुनती है। नाथूदान जी ने माँ के उक्त हर्ष का कितना सुन्दर वर्णन किया है—

सुत मरीयो हित देशरै हरख्यो बंधु समाज।
माँ न हरखी जनमदे उतरी हरखी आज॥

अर्थात—मातृ-भूमि की रक्षा करते २ पुत्र बलिवेदी पर चढ़ गया। जब यह संवाद गाँव में पहुँचा तो सारे बन्धु हर्ष से पुलकित हो उठे पर सबसे अधिक हर्ष लड़के की माँ को हुआ जिसने उसे अपनी कोख से जन्म दिया था।

बैठो जोड़े बापरै बांध कसूंबल पेच।
बेटो घर आयो नहीं धोळी बाँधणहेत॥

पुत्र रणक्षेत्र में गया और कर्तव्य की वेदी पर शहीद होगया। माँ ने कहा कि मेरा बेटा बड़ा शूरवीर था। उसने अपने बाप के बलिदान होने के पहले ही अपने को बलि कर दिया। वह सदा ही पचरंगी पाग बाँध कर अपने बाप के साथ बैठा। वह वीर था अतः अपने बाप के पहले ही वीर गति को प्राप्त हो गया। वह बाप का मरण शोक मनाने के हेतु घर पर नहीं आया न शोक की प्रतीक सफेद पाग ही बाँधी।

राजस्थान में अन्य प्रान्तों की भाँति होली का त्योहार बड़े चाव और उमङ्ग से मनाया जाता है। होली की मदमाती मस्ती में राजस्थान की जनता के द्वारा जो फाग गीत गाये जाते हैं वे बेजोड़ हैं। फाग गीतों में भी लोरियों की सी सीख अन्तर्हित है। चङ्ग के धमाके के साथ फागुन की लय में जन लोरी गाई

जाती है तो सुषुप्त हृदय में भी नव जागृति का पदार्पण हो जाता है। हिमावृत से कुण्ठित शोणित में भी प्रलय का उद्भाव सा प्रतीत होने लगता है।। माँ किन ओजस्वी शब्दों में अपने पुत्र को सीख देती है, यह फाग-गीत की निम्न पंक्तियों से पूछिये—

रेशम री तो डोर हिडोले,
हालरियो हुलरावै ओ;
मरवा रा मीठा गीतड़ला,
यूं मायड़ गावै ओ,
थनै धवड़ायो ।।

हां रे थने धवड़ायो,
दूधड़ ला री शान राखे ओ,
थनै धवड़ायो,

हाँ रे थने धवड़यो,
अजमा थारी आन राखो ओ,
थनै धवड़ायो ।

दूधड़ ला री धारा पड़ताँ,
भाटा परा फाटै ओ,
टाबरिया री तेगां आगै
वैरी नाठै ओ—
दूध पूजायो ।

भोळो रण में शीश भूल्यो
लीलो घरैं ल्यायो ओ,
तीनो लोकों लोयाँ रो
रातंवर छायो ओ;
दूध पूजायो।

मां अपने पुत्र में प्रारम्भ से ही स्वदेश बलिवेदी पर मर मिटने के अमर संस्कार भरती है। डिंगल साहित्य में मातृ-हृदय का यही अमिट आदर्श है। मातृ-हृदय की स्वाभाविक ममता कर्त्तव्य की घड़ियों में विहंसती बलि हो जाती है। यही राजस्थान की माताओं के व्यक्तित्व का अनुपम उदाहरण है। गीत की पंक्तियों का अर्थ बड़ा ही मार्मिक है। मां बच्चे को कह रही है "बेटा तूने मेरा दूध पिया है, मैं तुझे इस स्वर्णिम पालने में झुला रही हूँ। तुरी मां के दूध में पराक्रम है उसकी धार से पाषाण भी फट जाते हैं। वही दूध तूने पिया है। बेटा अपनी तलवार के आगे अरिदल को न टिकने देना। मेरा हृदय उस समय गर्व से फूला न समाएगा। जब तुम स्वदेश प्रेम में मतवाले होकर रणक्षेत्र में अपना शीश भेंट कर आओगे। लीला घोड़ा तेरा धड़ लेकर जब अपने घर के द्वार पर आएगा उस समय मेरी छाती में हर्ष की बाढ़ आजाएगी। उस समय मैं समझूंगी कि मेरे कोख के जाये ने मेरा दूध उज्वल कर दिया। तेरी तलवार का पानी अरिदल अवश्य मानेगा। अरिदल के शोणित से समस्त धरती और आकाश लाल वर्ण हो जायेंगे।

जिस प्रदेश की वीर भूमि में मरण को कभी न भुलाया गया हो वहां पर ऐसे साहित्य का होना अनिवार्य है। मां को जननी

जन्म-भूमि की स्वतन्त्रता अति प्रिय है। वह स्वदेश के प्रति एक क्षण भी अपने पुत्र को अकर्मण्य नहीं देख सकती। कर्त्तव्य और शौर्य हीन पुत्रों के प्रति उसका प्यार नहीं, तभी तो वह कहती है।

होत न पूती तो इतो दुख न करती याद।
देश मूओ परवश हुओ पूत फिरे आजाद॥

पंक्तियों का भाव है "आज देश पर विपदा की घटनायें उमड़ी हुई हैं। देश परतन्त्रता की जंजीरों में जकड़ा हुआ है। दासता की इस सघन अन्धेरी रात्रि में मेरे कायर पुत्र अकर्मण्य एवं कायर बनकर बैठे हुए हैं। इससे तो अच्छा होता कि मैं बाँझ स्त्रियों में होती, कम से कम मन को तो संतोष होता कि मेरे कोई जाया नहीं है।"

नपूती जो मैं होवती तो इती न होती अधीर।
सुत सूरा होता थकां नित बहावूं नीर॥

परतंत्रता की उन संकट कालीन घड़ियों में जब कि देश तड़प रहा था एवं अंग्रेजी शासन की तूती बोल रही थी उस समय वह कहती है "यदि मेरे कोई पुत्र न होता तो मैं इतनी अधीर नहीं होती पर वीर पुत्रों के होते हुए भी मेरी प्यारी मातृ-भूमि आज गुलाम है, गोरों के हाथ में है।"

राजस्थान की मातायें बच्चे को जन्मते ही क्षात्र धर्म का सन्देश देती हैं। क्षत्रिय जन्म से आंका नहीं जाता। उसकी परिभाषा संस्कारों में होती है। क्षत्रियत्व की परिभाषा में मां कहती है —

संग बल जावे नारियां नर मर जावे कट्ट ,
घर बाळक सूना रमै उण घर में रजवट्ट ॥

जिस घर में नर अपने देश के आह्वान पर हँसते हँसते रण में कट जायें और नारियाँ धू धू करती हुई आग में अपने शरीर को होम दें, और छोटे-छोटे बच्चे मात्र उस घर की रखवारी करते हों उसी घर में सच्चा क्षात्र तेज है। राजस्थान के ये मरण भाव संभव है आज युवकों को न भायें पर इन्हीं भावों पर स्वतन्त्र भारत की राष्ट्रीय चेतना टिकी हुई है।

जन्मते ही जो वधाई गाई जाती है उन लोक गीतों की पंक्तियों में राजस्थान की संस्कृति बोलती है जिस पर देश गर्व कर सकता है। उस बलिदानी भूमि की मातायें पुत्र जन्म के हर्ष में कितने सुन्दर भावों से युक्त गीत गाती हैं—

"आज पतासा वंटीजे कुंवरां रै कोको जायो ओ ।"

आज कुँवर साहब के घर में पुत्र जन्म हुआ है अतः पतासे बँट रहे हैं।

'ढोलीड़े ढोलां रे ढमके, गीत मरणरो गायो ओ ।"

ढोली ने ढोल के ढमाके के साथ उसके पूर्वजों के बलिदानी गीत गाये।

"बोल्यो बाबा जी रो बगतर मने पेरणीयो आयो ओ ।"

पितामह का बख्तर बोल उठा मुझे पहनने वाला जन्म चुका है।

"तरवार बोलगी पेल्यांही माथा वाढ़ण्यो जन्मयोओ ।"

पुत्र के जन्म लेते ही घर में पड़ी तलवार बोल उठी कि आज अरि मस्तक को काटने वाला इस धरती पर जन्म ले चुका।

'सरदारो री मूँछों फड़की वंश वधायो जन्मयो श्रो।"

कटुम्ब के सरदारों की मूंछें फड़क उठीं। कुंवर के जन्म लेते ही उन्हें वंश का फिक्र चला गया। वे बलिवेदी का आह्वान करने लगे। कारण उनके वंश में वंशबेला का अंकुर जन्म गया।

बच्चे के जनमते ही बधाई में भी ऐसे गीत जिस प्रदेश के लाल अपनी माताओं के मुख से सुनते हैं तो स्वदेश के प्रति बलिदानों का नव इतिहास बनाना उनके हेतु कठिन नहीं है।

इला न देणी आंपणी हालरियाँ हुलराय।
पूत सिखावै पालणे मरण लड़ाई माय॥

मातृ-भूमि का एक एक कण बड़ा ही मूल्यवान है। माँ अपने बच्चे को पलने में झूलते हुए सीख देती है कि हे बेटा अपनी मातृ-भूमि का एक कण भी किसी को मत देना उसकी सुरक्षा हेतु मरने में ही तेरे वंश का मुख उज्ज्वल है।

विदा की अन्तिम घड़ियाँ बडी करुण होती हैं। उस समय हृदय में किन भावों का सचार होता है यह भुक्त भोगी ही जानता है माँ अपने पति के साथ सती होने को जा रही थी। क्षण भर बाद धू धू करती हुई आग में जलकर भस्म हो जाने वाला माँ बाप का शरीर चिता पर था। नन्हा सा बेटा उसके सामने आया। मातृ हृदय की ममता निम्न भावों में निखर पड़ी।

बेटा ! हूँ हाली बळण थूं छोटो इण बेर।
सरगां वेगो आईजे बहू ने लारै लेर॥

भाव का अर्थ है हे बेटा मैं तो तुम्हारे पिता जी के साथ सती होकर अपने सतीव्रत धर्म का पालन कर रही हूँ पर तू इस समय छोटा है कोई चिन्ता नहीं, ईश्वर करे तू जल्द ही बड़ा हो जाय। मैं उस घड़ी के हेतु स्वर्ग में तुझे देखने को उत्सुक रहूँगी जबकि तू मेरी बहू के साथ इसी प्रकार लेकर स्वर्ग में आयेगा।

बाप कट्यो मायड़ बळी घर सूनो जाणीह।
पूत अंगूठो चूंखने राखै निगराणीह॥

बेटा! पड़ोस में देख तुझसे भी छोटा बच्चा अंगूठा चूंख कर अपने घर की रखवारी कर रहा है जिसका बाप रण क्षेत्र में कट गया है और माँ सती हो गई है।

राजस्थान का इतिहास अमरशत बलिदानों से भरा पड़ा है। ये बलिदान भी अपने ही ढंग के हैं। माँ की ममता का मोल शब्दों में व्यक्त नहीं किया जा सकता, पर वही ममता समय आने पर अपने पुत्रों को हँसते हँसते बलिवेदी पर चढ़ने को प्रेरित करती है। मेवाड़ के इतिहास के पन्ने उलटने पर हमें पन्ना की गाथा मिलती है। उस वीर माता ने बनवीर के हाथों से राणा उदयसिंह को बचाने के लिए अपने पुत्र रत्न का बलिदान अपनी आँखों के सामने देखा। अपनी आँखों के सामने अपने नन्हे से बालक का बलि होना एक माँ के हृदय में कितना हृदय विदारक प्रकरण हो सकता है यह एक माँ ही बता सकती है।

उण सांझोड़ी वेला में सूरजड़ो लाग्यो ढलवानैं।
करमेती बैठ गई झटपट अगनी रै ऊपर बळवानैं॥

सूर्य! पश्चिम की गोद में डूब रहा था उसकी रक्तिम किरणें उस शोणित से सने चित्तौड़गढ़ पर पड़ रही थीं। ऐसे समय में

कर्मावती अपने कोमल अङ्ग को अग्नि के भेट करने के हेतु बैठ गई।

पण चिणगारी चेन्या पैली इक बात हियारी केणीही।
नाना टाबर महाराणा री बस भाळ भळामण देणीही।

जौहर ज्वाला की चिनगारी चेतने के पहले माँ की ममता जाग पड़ी। उसे ध्यान हो आया उदयसिंह अभी छोटा है। उसके लालन-पालन का उत्तरदायित्व किसी को सौंपना था।

झाँझर पेरयाँ सो ठम २ करतो उदियो मुखड़ा सामे आयो।
टावर री ओळू आतो ही मायड रो हिवड़ो भर आयो।

परन्तु उस समय उदयसिंह वहाँ नहीं था। माँ के सामने उसका काल्पनिक चित्र सा आगया। झाँझर पहने, ठम ठम करते राजकुमार की प्रतिमा माँ को सामने से दिखाई पड़ी। उसका हृदय भर आया।

पन्ना रो टाबर करने खड़यो जाणे उदयारो है भाई।
नानी आगड़ली राणा री पन्ना दाई ने पकड़ाई॥

स्तवन मे स्वप्न चला। उसने देखा मानो पन्ना का पुत्र और नन्हा राजकुमार उसके सामने खडे हैं और रानी कर्मावती अपने लाडले की अगुली पन्ना दाई के हाथ में थमा रही है।

ले आज लाडलो सॉपू हुँ इणरी करजे थूं रखवाली।
सोहल्यॉ वाळी सिर मोड़ पन्ना माता विणजे थूं विरदाळी

प्रिय सखी! मैं तुझे हृदय का टुकड़ा और मेवाड़ की धरोहर सौंप रही हूँ। उसकी सुरक्षा का भार तुम पर है।

बोली ! पन्ना उदयसिंह रै ढोल्ये कीडोनी आवैली
अवसर आयां रजपूतण यूं रण खेतां मे कट जावैली

वीर क्षत्राणी पन्ना ने कहा उदयसिंह का कोई बाल भी बाँका नहीं कर सकता। उसके हेतु मैं अपने प्राण भी न्यौछावर कर दूँगी।

या बात कही जद सरगां मे जस गीत अपछरा गावैही
धू-धू करती अगनी में वळ करुणा सुरगापुर जावैही

पन्ना की इस प्रतिज्ञा को सुन कर स्वर्ग की अप्सरायें उसका यशगान करने लगीं और रानी कर्मावती ने जौहर कर स्वर्ग की राह ली।

करमा रै अगनी वल्यां पछै, राणा ने मेलाँ आई
प्रणवीर सिंघणी पन्ना वो सांची रजपूतण री जाई
चितौड़गढ़रा-मेलां में राणा रो पालण करती ही
आंख्याँ री पलक्यां रै ऊपर राणा रा पगल्या धरती ही

कर्मावती के सती होने के बाद उस वीरांगना ने राणा उदयसिंह का लालन पालन किया। उस दृढ़ प्रतिज्ञ नारी ने अपने स्वामी की सुरक्षा के हेतु आँखों की पलकें बिछादी। चित्तौड़ के राजभवन में पन्ना एक सच्चे प्रहरी की तरह उदयसिंह की सुरक्षा करती थी पर :—

पण राज काज रो काम सभी वनवीर रोज ही करतो हो
कोकर वण जाऊं महाराणो बातड़ली मन मे घड़तो हो
मेवाड़ी सिंघासण खातर बोल्यो राणा ने सारूंला
खुद वणजाऊंला महाराणो गीलड़ना सुसरा मारूंला

या सोच तलवार लियां महलां मे चटपट चढ आयो
उणरैं पैंली पन्ना नैं या बात कोई इक कह आयो

राज कार्य का सारा भार वनवीर पर था। उसके हृदय मे उदयसिंह हमेशा खटकता था। उसके रहते वनवीर का महाराणा होना असभव था। उदयसिंह की मृत्यु ही मात्र उसके स्वार्थ का समाधान था। उदयसिंह की हत्या के मनसूबे वह बांध रहा था। एक दिन दृढ़ सकल्प कर वह महाराणा की हत्या करने के हेतु प्रेरित हो गया। नगी तलवार लेकर राणा का सर काटने के हेतु चल पड़ा उस ओर जहाँ पर पन्ना के सरक्षण में महाराणा रहते थे। इस सब घटना का पता एक पन्ना के विश्वासपात्र सेवक को हो गया और समस्त बात वनवीर के पन्ना तक पहुँचने के पहले ही पहुँच गई।

नदी किनारैं भेज्यो राणा नैं खुदरा टाबरनैं बुलवायो
मरणो है मालक रैं खातर तुतळी बोली मे समझायो
पेल्यां तो अंजस हुयो भायड़ नैं टाबर नैं कीकर मरवाऊं
काळजिये इक हूक उठी नेणाने कीकर नुचवाऊं

पन्ना ने राणा उदयसिंह को गभीरी नदी के किनारे दूत के हाथ चुपचाप भेजकर अपना कर्तव्य निश्चित किया, दूसरों के जाये के हेतु अपने लाडले का वलिदान। बडा करुण समय उपस्थित था। कलेजे मे एक हूक उठी हाय ! अपनी आंखों के तारे को कैसे मरवादूँ ? अपने हाथों से अपनी ही आँखें कैसे फोड़ दूँ ?

धम धम लाज्या सेडी पगला ध्यान उणोरो हो आयो
मरवारी घड़ियां रे पैली केसरीया कपड़ो ओढायो

अपने लाड़ले को तुतली भाषा में मरण का मौन संदेश दे उदयसिंह की जगह सुला दिया। अपने हाथों से अपने बच्चे को बलिवेदी पर सुलाना राजस्थान जैसे वीर प्रांत की माताओं का आदर्श है। मरण की घड़ियाँ समीप थीं। बनवीर की पद ध्वनि साफ सुनाई पड़ रही थी वह मां के हृदय से टकरा कर पाषाणों को भी टूट-टूट कर रही थी। मौत की घड़ियों के पहले उस वीर माता ने बलिदानों का प्रतीक केसरिया कपड़ा ओढ़ा दिया।

इता में हरामी आ पूछ्यो बोल्यो "पन्ना उदय कठै" ?
पाय इशारो तेग पड़ी पोढ़्योपन्ना रो लाल—जठै
ऊंकारो भी न कर पायो न बोल सक्यो ओरी माई !
न खोल सक्यो मुखड़ो नःनो मायड़ भी कुछ न कह पाई

इतने में नमक हराम महलों में आ गया गरजते हुए उसने पन्ना से पूछा। बता उदयसिंह कहाँ है ? पन्ना का हाथ बच्चे की ओर बढ़ा। उस दुष्ट बनवीर ने उसके दो टुकड़े कर दिए। बच्चा न तड़प ही सका न वह तुतली बोली में मां शब्द ही उच्चार सका। पन्ना का हृदय टूक-टूक हो रहा था पर वह कुछ नहीं कह पाई।

टूक काळजो तड़पै हो हिवड़ो बोले हो "ओ जाया" !
पण क्षत्राणी री आंख्या में आंसूडा उटा दिन भी आया
जिण टाबरिया नै जनम दीयो थानेलां जिणनै घबड़ायो
हिन्दवा सूरजरो रक्षा में केसरीयो कुंवर मरवायो।

मां का कलेजा मुँह को आ रहा था ! हृदय में पुत्र की ममता हृदय हिला देने वाला रुदन कर रही थी पर उस क्षत्राणी की आंखों से आंसू नहीं आए। कितना महान त्याग था यह !

जिस पुत्र को अपनी कोख से जन्म दिया, जिसको उसने अपने प्यार से दूध पिलाया उसी प्यारे को हिन्दू सूर्य (महाराणा) के हेतु अपने ही हाथों बलि वेदी पर चढा दिया।

होती न पन्ना हिंदवाणी पाताल सो लाल हुतो कोनी
होती न हल्दी घाटी भी रजपूती ख्याल हुतो कोनी,
हिन्दवाणी रै ऊपर साँची काळो कामाळिया पुतजाती
होती न किरण सी कुँवरी तो लाखोरी इज्जत लुटजाती।

अगर पन्ना सी वीर माता मेवाड में न होती तो स्वतंत्रता का प्रताप भी न होता। जिस हल्दी घाटी पर आज भारतीय इतिहास गर्व करता है वह भी न होती न वे इतिहास के चिर स्मरणीय बलिदान भी। अकबर के नौरोज के जश्न में उसकी छाती पर कटार लेकर चढने वाली वह वीर राजकुमारी करुण भी न होती तो लाखों बहनों का सतीत्व लूटा जाता। यह सब पन्ना के पुण्य प्रताप से बन पड़ा—

इतिहास अधूरो रै जातो, सजको पर पाणी फिर जातो
अकबर शाही रो बादळ्यो, हिन्दवाणं ऊपर छा जातो
जद तक सूरज नै चाँदड़लो जगरै आकासां चमकैलो
तद तक पन्ने नै हीरे सो जसड़ो दिक दिक मे दमकैलो

यदि राजस्थान के इतिहास मे पन्ना अपने पुत्र का बलिदान न देती तो इतिहास अधूरा रह जाता। अकबरशाही बादल भारतीय सस्कृति पर छा जाता। उस वीर माता पन्ना को जब तक सूर्य और चन्द्रमा इस आकाश में हैं तब तक लोग बड़ी श्रद्धा की दृष्टि से देखेंगे।

डिंगल साहित्यकारों ने नारी के मातृ रूप को जिस रूप में पाठकों के सामने रखा है वह राजस्थानी साहित्य की अपनी देन है। वात्सल्य और शौर्य का योग डिंगल साहित्य में वर्णित नारी के रूप में ही मिलता है।

नारी एक वीरांगना के रूप म

वीररस डिंगल साहित्य की आत्मा है और वही है राजस्थान का आभूपण। उस तपतपाती मरुभूमि में वीरता का अंकुर उठा, फला फूला और एक विशाल वृक्ष के समान विकसित हुआ। राजस्थान के वलिदानी पुत्रों की अमर कथायें एक अद्वितीय आकर्पण रहीं हैं। उसकी नारियों का शौर्य भी उन वीरों से कम नहीं। डिंगल साहित्य इस बात की प्रत्यक्ष साक्षी देता है।

शीश पुगायो पीव कनै थायो रगतां कीच
रहियो पण बहियो नही काजळ नेणां बीच।

सोहाग की रात थी। सलूम्बर धीश के रगमहल में शहनाई बज रही थी। वर्पों की अतृप्त प्यास! मदमाते यौवन का उल्लास था, मस्तक में प्रणय की आंधी और आंखों में स्नेह की बरसात लेकर सलूम्बर रावसाहब अपनी प्रियतमा की चित्रसारी में गये। प्रथम मिलन था। धड़कन से धड़कन टकराने का समय था। उधर हाड़ी रानी का भी यही हाल था। पुण्य मिलन की उस मदमदाती बेला मे प्रेमियो के हृदय की क्या सज्ञा होगी यह तो सलूवर राजमहल की वे मौन दीवारें ही बता सकती है। उन हाव भावों का नामा लेखा उन मूक दीवारों में युगों वाद भी अंकित है जिसे भावुक आंखें ही पढ़ सकती हैं।

जीवन की उन सरस घड़ियों में गूंज उठा शखनाद! रणक्षेत्र का संदेश आया। सलूम्बर धीश को रण प्रयाण करना

होगा। महाराणा का आदेश था। कर्त्तव्य एवम् पुण्य की उलझन में सलूंबर राव कर्त्तव्य को कुछ क्षणों के हेतु भूल गए। हाड़ी राणी ने उदबोधन दिया और कहा "लो चूड़ियाँ पहनकर घर में रहो मैं तुम्हारी जगह रणक्षेत्र में लड़ने के हेतु जाऊंगी। सोहाग रात का आनन्द भी न लूट पाई थी वह वीरांगना! उसने अपने प्राणों से प्यारे सरदार को कर्त्तव्य पर मर मिटने को भेज दिया।

रणभेरी बज रही थी। सैनिक पुलक रहे थे। विदा की अन्तिम घड़ियों में सरदार को हाड़ी की याद आ गई। उसने सेवक को भेजकर प्रेम का स्मृति चिन्ह मंगवाया। हाड़ी रानी के रगरग में बिजली दौड़ आई। उसने तलवार से अपना सिर काट कर सेवक के हाथ सरदार को भेज दिया ताकि वह उसके मोह में कर्त्तव्य विमुख होकर न आवे। कविवर नाथूदान महीयारीया ने हाड़ी रानी की वीरता को दर्शाते हुए उक्त दोहे को लिखा है। जिस का अर्थ है कि हाड़ी राणी ने स्वय हाथ से सिर काट कर चूड़ावत को भेज दिया। रानी की आँखों में आँसू की एक बूंद भी न गिरी। वह अंजन आँखो में ही रहा बहकर कपोलों पर नहीं आया।

काट साळू सिर कट्टियो घूंघट रहीयो भाळ।
या मुख रावत देखियो थूं किम देखे थाळ॥

महीयारीया जी डिंगल साहित्य के वर्तमान प्रतिनिधि कवि हैं। उनकी कल्पनायें बड़ी गहरी हैं। हाड़ी राणी के सतीत्व और शौर्य का जीता जागता प्रमाण उनके उक्त दोहे में भरा है। भाव है "हाड़ी रानी ने अपना सर हाथों से काटा उसके साथ के सुन्दर केश भी कट गए। सामने थाल पड़ा हुआ था रानी मुख पर आवरण के स्वरूप छाया घूंघट यह सब दृश्य देख रहा

था। उसने थाल को सम्बोधन करते हुए कहा " हे थाल हाड़ी रानी के मुख की परछाईं तेरे अन्दर नहीं दिख सकेगी। मैं राणी की मर्यादा और लज्जा का प्रहरी हूँ। यह मुखडा देखने का अधिकार तो सलूंवर धीश (उसके पति) को है।

वीरांगना हाडी रानी की वीरता महीयारीया जी के शतक मे लबालब भरी पडी है।

हाड़ी भूषण बाँटिया सुरपुर लिया न साथ
धड़ रा रग महलो दिया सिररा रावत हाथ

वीरांगना हाडी रानी ने अपने बलिदान के पहले आभूषण बाँट दिये वह स्वर्ग साथ नहीं ले गई। धड़ के आभूषण रग महल में रह गये एव सिर के प्रियतम के पास।

नह पड़ोस कायर नरा हेली बास सुहाय।
बलिहारी उण देशरी माथा मोल विकाय॥

वीरांगना अपनी सखी से कहती है कि हे सखी मै उस पडोसी को भी पसन्द नहीं करती जो कायर हो, बुजदिल हो जिसका रण भेरी सुनकर खून खौल न उठता हो। जिसने मृत्यु के मुख में जाना न सीखा हो। मैं उस देश का अभिनन्दन करती हूँ जहाँ पर सर बलिवेदी पर चढ़ते हैं।

पागां वाळा शूरमा खागां कटै जरूर।
बेठ अगन बिच बोलणा साडी वाळा सूर॥

इस दोहे मे वीर रस लबालब भरा हुआ है। कविवर नाथूदान जी महिपारीया वीरांगना की प्रशसा में लिखते हैं—पांगा वाला शूरमा। अर्थात् पगड़ी धारण करने वाला पुरुष समाज तलवार से लडकर अपना बलिदान चिरस्मरणीय कर सका पर

नारी के व्यक्तित्व की बलिहारी है जो अग्नि की झारों में बैठकर वैभव के वरदान देती हुई अपने पतिदेव की लाश के साथ जलती है।

शीश अमावड़ शिव गळे गज हसती रा-दंत।
शत्रु अमावड़ सुरग में आँख अमावड़ कंत॥

वीरांगना अपने पति के पराक्रम की प्रशंसा कर रही है। वह कहती है हे सखी! आज मेरा पति रणक्षेत्र में युद्ध कर रहा है भगवान् शिवजी आज धरती पर मुंडों की माला पहनने आए हैं। प्रियतम की तलवार से काटे हुए सिर इतने हैं कि आज स्वयं शंकर के गले में समा नहीं रहे हैं। रणक्षेत्र में हाथी इतने मारे गये हैं कि हाथी दांत समा नहीं रहे हैं। रण-क्षेत्र उनसे भर गया है। स्वर्ग में कोलाहल मचा हुआ है क्योंकि मरे हुए शत्रुओं के हेतु वहां पर तिलभर भी जगह नहीं है। मेरी आंखों का कहना ही क्या उनमें आज मैं अपने पति के परा-क्रम को आंखों की पलकों में बन्द नहीं रख सकती। मेरा पति बहुत बहादुर है। उसकी तलवार का लोहा शत्रु मानता है।

एक वीरांगना का पति अति कोमल प्रकृति का था वह जब रणक्षेत्र के अन्दर अपने दुश्मन का मान मर्दन कर विजय श्री लेकर घर लौटा तो नारी का हृदय हर्ष से फूल उठा वह कहती है—

कठण पयोदर लागतां कसमदतो तूं कन्त।
सेल घमोड़ा सहिया कियां किम सहिया गज दंत॥

उक्त दोहे में श्रृंगार और वीररस साकार मूर्तिमान हो उठा है। वीरांगना ने अपने पति को रणक्षेत्र में विजय पताका हाथ

मे लेकर घायल अवस्था मे घर आए देखा तो प्रणय मिलन की मदमाती घड़ियों मे पतिदेव की कोमल प्रकृति विस्मृत स्मृति पटल पर आगयी। उसने अपने पति से पूछा हे पतिदेव ! विस्मय है आपने रणक्षेत्र में अरिदल के भालों एवं गजदन्तों के प्रहार किस प्रकार सहन किए जब कि स्नेहालिंगन की वेला मे मेरे स्तन का स्पर्श होते ही तुम्हें अटपटा लगता था।

सखी। अमीणा कंथरोलावा जितरो मांस।
ताल्यो तो काटो तुले छेड़्यां मण पचास॥

एक वीरांगना का पति कृश था। पड़ोसिन ने उसे ताना मारा कि तुम्हारा पति अति कृश एवम् दुर्बल है उस पर वीरांगना कहती है—हे सखी ! मेरा पति दुर्बल है पर जरा उसे छेड़कर तो कोई देखले। लावे पक्षी के बराबर उनका मांस तोल में भले ही हो पर उन्हें छेड़ने पर वह ५० मन हो जाता है अर्थात् रण मे उनका शौर्य अद्वितीय हो जाता है।

देख सखी मोटा गढ़ाँ गोळां री झड़ियाह।
कोयक नांखे काकरी मडरी झापडियां ह॥

महल में रहने वाली एक सहेली ने झोंपडे में वास करने वाली वीरांगना को किसी दिन अपने महल और अपने वैभव की इठलाहट बताई थी। एक समय आया जब गांव पर धावा हुआ। तोपों से महल उड़ाया जाने लगा। उस दिन दिए हुए ताने का प्रत्युत्तर झोंपडे वाली नारी ने दिया कि हे सखी ! देख मेरी झोंपडी में रहने वाले वीर का पराक्रम आज तुम्हारे महल पर गोले दागे जा रहे हैं पर बलिहारी है मेरी घासफूस की झोंपड़ी की जिस पर ककरी फेकने की भी किसी में हिम्मत नहीं होती।

ठांठो देता ठांकरां दाणो भर भर दन।
पिवने हरवल देखजै आज उजाळ अन्न ।।

राजस्थान के देशी राज्यों में उमरावों को अपनी निजी सेना रखनी पड़ती थी। इन सैनिकों को वेतन में निश्चित धान दिया जाता था। एक राजपूत सैनिक की स्त्री जब अपने पति के वेतन का धान लेकर आई तो वह तोल में कम उतरा। इस बात का उसे बड़ा खेद था। एक दिन जब कि किसी ने जागीर पर हमला किया तो उसकी स्त्री ठाकुर से कहती है—हे ठाकुर! आओ और देखो मेरा पति कितना शूरवीर है कि अरिदल को मृत्यु के मुख मे ठूंसे जा रहा है। तुम तो प्रायः जो खाने को अन्न देते थे वह भी तोल मे कम उतरता था। पर उस धान को मेरा पति सेना में अपना रक्त बहाकर उज्ज्वल कर रहा है।

रण कटिया रजरज हुआ रज में मिल्या बहुत।
हेली कीकर ओळखूं रज है के रजपूत ।।

वीरांगना ने जब अपने पति का स्वर्गवास सुना तो रणक्षेत्र मे पति का सर ढूंढने को गई पर शूरवीरों का सर तो दुर्लभ था तलवारों से वे इतने कट गए थे कि रजकण और राजपूत योद्धाओं में कोई अन्तर नहीं दिख रहा था। वीरांगना अपनी सहेली से कहती है कि हे सखी! मैं कैसे पहचानूं कि रण की यह रज है या रण मे कटे छोटे-छोटे मांस के कण है। वे इतने मिट्टी में मिल गए हैं कि पहचानना कठिन है कि यह रणक्षेत्र के रजकण हैं या शूरवीर के मांस के टुकड़े।

एक मतीरो नह दिये कीणो साठे कीर।
तिण साठे माथा दिये रजवट जायावीर—

वीरांगना कहती है कि अन्न के एक दाने के देने पर एक मतीरा भी कोई मोल नहीं देता पर उसी के वदले ये राजपूत वीर अपना मस्तक दे देते हैं। राजस्थान के वीरों का यह अमिट आदर्श है कि वे जिस घर का अन्न-जल ग्रहण करते हैं उसके हेतु अपना सिर वलिवेदी पर चढ़ा देते हैं। मातृभूमि जिसके अन्न-जल को खा-पीकर वड़े होते हैं उसके हेतु मरना अपना परम पुनीत कर्त्तव्य मानते हैं। किसी ने वीरांगना से राजपूत की व्याख्या पूछी तो उसने कहा—

नह सखी एत्र छालरा नहगढ गाँवाँ हूत।
जो मरही हित देश रै है वे ही रजपूत॥

हे सखी! राजपूती का निशान ये रजवाडे का छत्रधारी राजा नहीं है। किसी भी वर्ग का व्यक्ति जो अपने देश के हेतु मरता है वही असली राजपूत है।

रजपूतो गुण पूछती देख सखी साबूत।
धड़ पडियो धर कारणे रज मेळा रजपूत—

हे सखी! तू राजपूत की व्याख्या पूछती थी आओ तुझे रण में ले जाकर वताऊं। स्वदेश के हेतु जिसका धड सर से पृथक हो गया है वही एक सच्चा राजपूत है।

राजस्थान के इतिहास में नारी ने एक वीरांगना के रूप मे जो वलिदान किया है समार में वह वेजोड़ है। ससार का नारी-समाज सगर्व उन्हें पढ़कर या सुनकर यह कह सकती है कि वह पुरुप से भी अधिक वीरांगना के रूप मे वीर है। चित्तौड़ की उन जौहर की चिताओं की कल्पना किसके हृदय में आश्चर्य पैदा नहीं करती। आज के युग में यह प्रश्न हो सकता है कि वे मात्र

भावुकता वश वैसा करती थीं पर नहीं—महाराणी पद्मनी अलाउद्दीन के खेमे में जाकर स्वयं आत्म-समर्पण कर सकती थी। पर उस नारी ने वैसा नहीं किया। आज भारत में रानी पद्मनी का नाम बड़ी श्रद्धा और प्रेम से लिया जाता है।

जसवंत री लाडी नै औरंग रा दल धमसाण घेरी,
वे हाडी रण लडी धूजी धरा नव खंडी हेरी।
लडी ले तेग महाराणी जोधाण री जबर,
फेफड़ा चीर फाड़िया भैरव भैरव ने हुई खबर।
खप्पर ले चोसठ जोगणी आई जेथ परनाळा रणतरा,
दली रो दल धड़क्का खायगो की वखाण उण समतरा
केहरी पर नाक्यो पेट आखेट कोनी आपरी,
वधारी वेल जसरी दूध सात कीरत वापरी—

यह वीरांगना हाड़ी राणी के रणक्षेत्र में लड़ने का वर्णन है। जोधपुर नरेश महाराज जसवंतसिंह जी का काबुल में देहान्त हो गया। दुर्गादास और मुकनदास खीची के नेतृत्व में रानी जोधपुर जा रही थी। दिल्ली पहुँचने पर औरंगजेब ने आज्ञा दी कि रानी और कुमार जोधपुर नहीं जा सकते इस प्रश्न को लेकर युद्ध छिड गया। उक्त पंक्तियों में वीरता का वर्णन है। पंक्तियों का अर्थ है कि जब महाराज जसवंतसिंह जी की वीर रानी को औरंगजेब की सेना ने घेर लिया तो रानी रणचण्डी बनकर रण में उतर पड़ी। उसके पराक्रम से धरती हिल उठी अरिदल के मुंड के मुंड जब गिरने लगे तो चौसठ योगिनियां और भैरव सभी अपनी रक्त पिपासा शान्त करने के हेतु आ गए। रानी ने अपना उदर चीर कर कुमार अजीतसिंह को जोध

पुर की धरोहर के रूप में मुकन्दास को देकर स्वयं रणक्षेत्र में जूझ मरी। ऐतिहासिक दृष्टि से इस प्रसंग पर इतिहास कारों में मतभेद है। वीरांगना हाड़ी रानी जोधपुर ने औरंगजेब की सेना से युद्ध अवश्य किया था।

उस लड़ाई में किस अभूतपूर्व साहस से उस वीरांगना क्षत्राणी ने युद्ध किया। यह निम्न पंक्तियों से जाना जा सकता है।

मरूधर मां रै जसरो सूरज,
काबुल में जिण दिन डूब गयो।
सारो मरुधर आ सुणने,
दुखरे सागर मे डूब गयो।

भणकार पड़ी जद राणी ने-
हाडो री छाती उमड़ पड़ी।
विकराळ भवानी सी गरजी,
रूं रूं मे ज्वाळा भवक पड़ी।

फेरां री चुदड़ी फेंक दीवी,
अरू हिगळू पूंचयो उणी घडी।
हिवड़े मे उमड़यो सागर सो,
रग रग रजपूती जाग पड़ी।

लटीया टिया सब छुबिखर गया,
फैंक दीया नेवर टणका।
कीना कपड़ा केसरी या ॥
रण रा लेवण ने रटका।

कड खेत कडक उठ्यो उण दिन,
नेसाण घुर्‌यो नंगारों रो।
जद वरसण लाग्यो लोयां रो,
मेह मूसळा धारां रो॥

परनाळ दियो जद पेट सिंघणी,
दुरगे बावा हुंकार करी।
बोल्या जय जय चामुंडा री,
रग रग राठौड़ी जाग पड़ी॥

घोड़ा सूं घोड़ा भिड़्या परा,
लोथां पर लोथां आय पड़ी।
भळ भळ तलवार भवानी,
म्यानां रै बारै निकल पड़ी॥

पण देशळा सूं दूर जाय,
क्षिपरा री तीरां देह पड़ी।
पण मारवाड़ री माटी भी,
हाडां रै माथे नही पड़ी॥

थारी प्रेम समाधी पर
श्रद्धा रो दीवो बाळण ने।
गुण गाहक ने ग्राहक मरग्या,
अब कुण आवै विरदावण नं॥

हाड़ी राणी के शौर्य का वर्णन उपरोक्त पंक्तियों में भरा पड़ा है। रानी की तलवार का पानी दुश्मन को मानना पड़ा—जिन हाथों मे सदा चूड़िये रहती हैं वे ही हाथ नारी के वीरांगना रूप में महान् समर्थ वन जाते हैं। उस युद्ध का वर्णन हमें इन दोहों मे भी मिलता है —

खग लेने जूं झी खड़ी, औरंग रैं आडीह।
हाडी रण हटी नही, जसवंत री लाडीह॥

महाराज जसवंतसिंह की रानी हाडी ने तलवार लेकर दुश्मन दल का सहार किया। दानव औरगजेब ने जब अपनी कुत्सित भावना को प्रकट किया तो रानी चंडी वन गई। रणक्षेत्र के उस हाहाकार में उस वीरांगना ने पैर पीछे नहीं दिया।

खग बाह् उलझे घणी मेंगल रहिया घूम।
नण दल ऊँची बाँध दो बाजू बंध री लूम॥

वीरांगनायें रण में लड़ रहीं थी-एक भावज थी दूसरी ननद। भाभी ने ननद से कहा—"युद्ध करते हुए मेरे बाजूबंद की लूंबें झूम रही हैं, तलवार चलाते समय बड़ी उलझन हो रही है। अतः हे ननद ! उसे ऊँची बाँध दो ताकि मैं तलवार अच्छी तरह से चला सकूँ।

घोड़े चढणो सीखिया भाभी किसडे काम।
बैरी चढने आवियो लीजो हाथ लगाम॥

डिंगल साहित्यकारों ने नारी को पिंजरे का पक्षी बना कर नहीं रखा। उन्होंने परदा प्रथा की भी हिमायत नहीं की। उन्होंने रण-प्रिय वीरांगनाओं की मुक्त कंठ से प्रशसा की है। नारी को

बचपन में सैनिक शिक्षा देनी चाहिए ताकि वे अवसर आने पर उसका प्रयोग कर सकें। प्राचीन काल में हमारी पुत्रियों को प्राय: सैनिक शिक्षा दी जाती थी। उक्त दोहे में एक ननंद अपनी भावज से कहती है—"हे भाभी ! तुमने बचपन मे घोड़े की सवारी सीखी है, तुम तलवार चलाना जानती हो। आज गाँव पर वैरी का हमला हुआ है—भैया रण मे गए हुए हैं। इस विकट परिस्थिति में हमे तलवार उठानी चाहिए।" इस देश की नारी ने एक वीरांगना के रूप मे बडे बड़े बलिदान किये हैं।

उदयपुर की राजकुमारी कृष्णा का बलिदान इतिहास भुला नहीं सकता। नैतिकता और आदर्श की प्रतिमा राजकुमारी कृष्णा का बलिदान, जिसने अपने को मिटाकर उजड़ते हुए मेवाड़ को बचा लिया, आज राजस्थान के मस्तक पर कलंक है। उस राजकुमारी के साहस का वर्णन किन शब्दों में करूँ ? राजस्थान मे फैले जहर को पीकर वह वीरांगना नील कंठ बन गई। जोधपुर और जयपुर की फौजों ने जब मेवाड़ के सुरम्य प्रदेश को घेर लिया तो उनके पिता महाराणा भीमसिंह और अन्य सरदार किंकर्तव्य विमूढ हो गए। मेवाड़ की डावांडोल स्थिति थी। संघर्षों में निरन्तर लड़ने वाली वह भूमि क्षणिक विश्राम चाह रही थी, पर बज उठा था रणनाद ! राजकुमारी कृष्णा ने जब देखा कि उसका रूप यौवन प्यारे मेवाड़ को खा जायगा, कितनी ही कृष्णाओं की लाज लूटी जाएगी, कितनी ही माताओं की गोद सूनी हो जायगी तो उस वीरांगना किशोरी ने हलाहल का प्याला एक नहीं दो नहीं तीन बार पीकर अपने को मानव जगत के कोलाहल से उठा लिया। उस बलि-दान से मेवाड़ उजड़ता उजड़ता बच गया। विवाह के इच्छुक

राजा लोग अपनी फौजें लेकर अपने २ राज्यों को लौट गए
अही भाव चित्र निम्न कविता में है :—

बरसां पैली मेवाड़ महिप,
राणारै राजकुमारी ही।
मां बाप री घणी लाडली,
वा कृष्णा राजकुमारी ही ॥

सुमनां री सेजां पोढण ने,
सजियोड़ी फिरती हारों में।
उणरै सुन्दरता री वातां,
ही चन्द्र लोक रा तारों में ॥

महाराणा रा आंगण मे,
वा फूलाँ री फुलवाड़ी ही।
रूप घणो सुन्दर कृष्णा रो,
वा पूनम री उजियाळी ही ॥

इन्द्रलोक री एक अप्सरा,
वा चामुंडा री सूरत ही।
रजपूतण थारी जायोड़ी,
वा महा सुन्दरी मूरत ही ॥

आयो सन्देशो कुंवरो रो,
कर शादी राजकुमारी री।

नाकारी मे उदयापुर पर,
इक सेना सजती भारी ही ॥

चित्तौड़ गढ़ री छाती पर,
चिणगार भभकती जद देखी ।
हरिया मेवाड़ी उपवन री,
फुलवाड़ उजड़ती जद देखी

पियो जहर रो प्यालो गट गट,
वा मीरां सी मतवाली ही ।
रजपूतण थारी जायोड़ी,
वा वाला हिम्मत वाळी ही ॥

कमल समान कृष्णा री देह ने,
जद ज्वाळा में जलती देखी ।
उण घणी फूटरी कुंवरी न,
अङ्गारां वलती जद देखी ॥

मोरा वन रा कूक पड़्या,
झाडां री पतियां रोईं ।
राजमहल में रोइ राणियां,
उदयापुर री नगरी रोई ॥

आड़ावला रा पथरा रोया
पीछोळा री लहरां रोई ।
कृष्णा री आत्म कहानी पर,
कवि हणवंत री कविता रोई ।।

नारी समाज आज अपने अधिकार मांग रहा है। डिंगल साहित्यकारों ने नारी समाज को पुरुष समाज से सदा ही बढ कर माना है उसके त्याग और व्यक्तित्व की पूजा की है।

समर चढै काढां चढै रहे पीव रै साथ ।
एक गुणा नर सूरमा तीन गुणा तिय जात ।।

नारी सदा ही पुरुष से बढ़ कर रही है। समय आने पर योद्धा की तरह वह युद्ध में लड़ती है और पति के रण में बलि होने पर वह सती होती है। शांति के समय गृहिणी के रूप में गृहस्थ के कर्तव्यों का पालन करती है।

चन्द उजाळे एक पख बीजे पख अंधियार ।
बळ दोय पख उजाळिया चन्द्रमुखी बलिहार ।।

चन्द्रमा तो अपने प्रकाश से एक ही पक्ष में उजाला करता है। दूसरे पक्ष में उसे अंधेरे की ओट में रहना पड़ता है। पर नारी अपने सीत धर्म का पालन करके अपने मां-बाप तथा पति—दोनों के घरों का मुख उज्ज्वल कर देती है।

आज भी उन वीरांगनाओं के अभिनंदन में बड़ी मस्ती से फाग गीत गाए जाते हैं—चित्तौड़ का जौहर हमारे सामने साकार हो जाता है '—

हल्दी घाटी रा मैदानां रगतां री नदियाँ खळकी ओ ।
धू-धू करती अगनी में हज्जारां वळगी ओ ।।
जौहर चित्तौड़ी

हांरे जौहर चित्तौड़ी मुड़दा मे नव जीवन फूंके ओ ।
जौहर चित्तौड़ी

लड़जो पण पड़जो मत पाछा चुण्डावत ने कीनो ओ ।
सैनाणी मे काट माथो आगो दीनो ओ ।।
अमर सहनाणी

हांरे अमर सहनाणी मुड़दा मे नव जीवन फूंके ओ ।
अमर सहनाणी—

कितने हृदय-ग्राही भाव हैं। योद्धाओं ने हल्दी घाटी का युद्ध करके इतिहास में अपने को अमर किया, पर वीरांगनाओं ने अपने मान और मर्यादा के हेतु धू-धू करती हुई ज्वाला में अपने को स्वाहा कर दिया। चित्तौड़ का वह जौहर मृत प्राय: जीवन में भी [illegible]टम की सी शक्ति का संचार करने की क्षमता रखता है। चुण्डावत रण-क्षेत्र में गया, पर वीरांगना हाड़ी रानी ने प्रेम की स्मृति स्वरूप अपना शीश काट कर पति के पास पहुँचा दिया।

महारानी लक्ष्मीबाई को कौन ऐसा है जो न जानता हो। किस कायर की भुजायें उस वीरांगना की गाथा सुनकर फड़क नहीं उठतीं ? स्वतंत्रता प्राप्ति के प्रथम युद्ध में उस वीरांगना

की कुर्बानी भुलाई नहीं जा सकती। दनदनाती गोलियों में अंगरेजों की सेना का घमंड चूर करती हुई वह रानी निकल पड़ी थी रण क्षेत्र में। उसकी अमर गाथा आज भारत के बच्चे बच्चे के मुख पर है। राजस्थान सदा से ही वीरता का पुजारी रहा है। उसके साहित्यकार उस दृष्टि से एक राष्ट्रीय एवं व्यापक दृष्टि कोण रखते हैं।

फौजां रा दळ बादळ लेने फिरंगी जद आयो ओ।
देश री आजादी खातर मरणो भायो ओ॥
झगड़ो आदरियो

हांरे झगड़ो आदरियो शूरां री जामण री बेटी ओ।
झगड़ो आदरियो

दांतां से घोडा री बागां हाथां तलवारां चमके ओ।
रगतां री रोळी लछमी रै माथे भळकै ओ॥
बैरी घबरायो

हांरे बैरी घबरायो फिरंगी रो पाणी ओछो ओ।
बैरी घबरायो

फिरंगी री फौजां जदै पाछै कोनी दीनी ओ।
राणी लछमी हाथां मे तरवार लीनी ओ॥
बैरी घबरायो

हांरे वैरी घबरायो लछमी जूझार होगी श्रो ।
वैरी घबरायो

उपरोक्त फाग गीत मे वीरांगना लक्ष्मीबाई की वीरता, उसकी स्वदेश भक्ति एवं रण कौशल का वर्णन है । रक्त से सनी राजस्थान की वह भूमि अपने वीरों और वीरांगनाओं की वीरता पर गर्व कर सकती है ।

सुर पुर तक निभ जावसी या जोड़ी या प्रीत ।
सखी पीव रै देसड़ै रांग बळ्दा री रीत ॥

वीरांगना को अपने प्रियतम के प्रेम के प्रति अमर विश्वास है—वह एक वीरांगना है और उसका पति एक वीर । वह अपनी सखी से कहती है—"हे सखी ! मेरे प्रियतम और मेरा प्रेम निभ जायगा । पति रणक्षेत्र से भागकर आने वाले कायरों में से नहीं हैं उन्हें स्वदेश के हेतु मरना आता है और उस देश में सती होने की प्रथा है । मैं सती होना अपना कर्तव्य समझती हूँ । मैं और पतिदेव साथ ही स्वर्ग मे जायेंगे । देव बालायें हमारा साथ ही स्वागत करेंगी ।

विवाह का समय था । वीर सामंत वीरांगना से शादी करने आया । ढोल और बाजे बजने लगे । ढोल की ध्वनि सुनते ही उस वीर की मूछें फरी उठीं । हथलेवा जुड़ा । वीरांगना ने उस समय ही अपने प्रियतम के व्यक्तित्व की परीक्षा करली कि वह वीर है । इन्हीं भावों को कवि ने इस दोहे में कितने सुन्दर ढंग से कहा है:—

ढोल सुणंतां संगळी ऊंचे भांय चढ़ंत ।
चंवरी ही पेछाणियो कुंवरी मरणो कंत ।

पिव आया आंगण बहे घावां रगत अतोल।
संग बलियांही छूटसी पग मंडणा री मोल ।।

दूसरे दोहे में गृह लक्ष्मी के अति सुन्दर भावों का समावेश बन पड़ा है। पति रणक्षेत्र से विजय प्राप्त कर घर लौटा है—सारा शरीर घावों से लथ पथ है। रक्त की धारायें फूट रही हैं—सारा आंगन रक्त से भर गया था। इसी आंगन में मेरा स्वागत हुआ था। वह अमूल्य मान जो गृह लक्ष्मी के रूप में मुझे मिला उसका मूल्य तो एक वीर पति के साथ जलने पर ही चुक सकता है।

पिव किण विद पूजन करूं तन तन खग टीकोह।
केसर रंग राचै नही कुंकुम रंग फीकोह ।।

रण जीत कर आए हुए वीर की वीरांगना गृह लक्ष्मी अपने पति से कहती है—"हे पति देव! मैं तुम्हारी पूजा किस प्रकार करूँ? तुम्हारे शरीर पर घावों के टीके पहले से ही लगे हुए हैं। रक्त का रंग लाल है अतः मेरे द्वारा लगाया जाने वाला कुंकुम का टीका फीका लगेगा और केसर का तिलक आरती की इस वेला में अच्छा नहीं लगता।

गढ कपाट भाला घणा इक हाथी भड़केह।
इक भालो भड़ हाथरै लाख हिया धड़केह ।।

अपने पति के शौर्य की प्रशंसा करते हुए गृहलक्ष्मी कहती है—"किले के दरवाजों पर लगे हुए भालों से तो मात्र एक हाथी ही धड़कता है। पर मेरे पति के भाले से दुश्मनों के हृदय धड़कते हैं।" अपने पति की वीरता पर वीरांगना गृह लक्ष्मी को कितना विश्वास है।

फागुन का महीना था, किसी लुटेरे ने ग्राम पर हमला कर दिया। गृह लक्ष्मी वीरांगना ने अपने पति के मस्तक पर कुंकुम का टीका कर तलवार बांधी और लुटेरों का नाश करने को भेजा। वीर पति ने उन लुटेरों को मार भगाया विजय श्री इसके हाथ रही। विजय के उल्लास में जब वीर घर आया तो गृह लक्ष्मी ने आरती उतारी और मंगल गीत गाए। इसी अर्थ का फाग गीत राजस्थान के लोक-साहित्य में मिलता है, जिसे सुन कर हृदय के शत् शत्-प्रसून गद्-गद् हो उठते हैं:—

रण में जातां कुंवरजी रै,
कुंकुम रो टीको कीनो ओ।
जीत्यां पाछै ठुकराणी,
बधाय लीनो ओ।
झंडो लहरायो ॥

रण में ही रगतां री धारां,
घाव घणेरा लागा ओ।
जागो सूतो रजपूती,
जूंझार जागा ओ।
झंडो लहरायो ॥

कुँवरजी रै जेहड़ा मायड़,
बेटा रोज जिणजे ओ।
कायर पूत जलमे जिणसूं,
भाटा जिणजे ओ।
झंडो लहरायो ॥

वीरता से ओत-प्रोत इन भावों को सुन कर और समझ कर किस कायर के रक्त में उबाल न आता होगा ? गृह लक्ष्मी वीरांगना है और वीरता की ही पुजारिन है। तभी तो फागगीत की अंतिम पंक्तियों में अपनी बहू सास से कहती है—"हे मां ! यदि पुत्र पैदा करने हैं तो मेरे वीर पति जैसे पुत्र पैदा करना जो सदा अपने ग्राम और देश की रक्षा के हेतु बलिवेदी पर चढ़ने को तैयार रहें। कायर पुत्रों से तो पत्थर ही अच्छे, जिनपर कपड़े तो धोए जा सकते हैं।

हे पड़ोसण बापड़ी की हिलावै नथ।
के के दीना कंथड़े हेम पराए हथ॥

गृह लक्ष्मी को अपने पति की दान-शीलता पर असीम गर्व है। एक पड़ोसिन के पति ने सोने की नथ बनवाई। वह स्वभाव की चंचला थी, अतः दानशील पति की पत्नि को बार बार दिखा रही थी। इस पर दानशीलपति की गृहलक्ष्मी कहती है—"हे पड़ोसिन ! तू मुझे बार बार यह नथ हिलाकर क्या दिखाती है, मेरे दानी पति ने ऐसे गहने तो भारी संख्या में लोगों को दान में दे दिए हैं—तू मुझे यह नथ क्या दिखा रही है ?

घर मोटो तोड़ो घणो मोटो पिव रो नाम।
जिण कारण हूँ दूबली गेला ऊपर गाम॥

गृहलक्ष्मी अपने मायके गई। शरीर दुबला देखकर जब उस से पूछा गया कि बेटी तू दुबली क्यों है ? उत्तर मिलता है—"मेरे पति का गाँव ऐसे स्थान पर है जहां पर तीन ओर से यात्री आते हैं। अतिथियों की बरसात-सी रहती है मेरे पति का उस क्षेत्र में यश है। मैं गर्व से फूली नहीं समाती हूँ, पर घर की आर्थिक

परिस्थितियाँ बड़ी विकट हैं। मुझे खेद है कि कहीं कोई अतिथि बिना खान पान के न चला जाय। मेरे पति की प्रतिष्ठा में कमी न आए इसी चिंता से दुबली हूँ" गृहलक्ष्मी के उदार हृदय की इससे अधिक क्या व्याख्या हो सकती है।

वीरांगना एक पथ प्रदर्शक—

जब जब पुरुष समाज में आत्म विस्मरण आया है, कर्तव्य और धर्म के वह विमुख हुआ है तो डिंगल-साहित्य की नारी एक साकार उद्बोधन है। राष्ट्र कवि मैथिलीशरण गुप्त की ये पंक्तियें प्रसंगवश स्मरण हो आई हैं —

स्वयं सुसज्जित करके क्षण में,
प्रियतम प्राणों के— प्रण मे,
हम ही भेज देती हैं रण में,
एक क्षात्रधर्म के नाते,
सखि वे मुझ से कहकर जाते ।

राजस्थान की वीर रमणियों ने क्षात्रधर्म के नाते अपने वीर पतियों को हॅसते हँसते रण मे भेजा है। उन्हें कर्तव्य मार्ग सुझाया है। जोधपुर के महाराजा जसवन्तसिंह एक वार रणक्षेत्र से भाग आए। रानी हाड़ी को जब यह पता चला कि उसका वीर पति रणक्षेत्र से भाग आया है तो उसने दासी से कहला भेजा कि महाराजा को कह दो कि मैं कायर पति की नारी नहीं हूँ। जोधपुर का किला कायरों का निवास स्थान नहीं है। यहाँ पर वीर जसवन्तसिंह आ सकता है, कायर जसवन्तसिंह नहीं। महलों के दीपक बुझा दिए गए और द्वारपाल को किले के फाटक वंद करने की आज्ञा देदी गई। महाराजा जसवन्तसिंह उल्टे पैर लौट पड़े। रानी की फटकार ने उस वीर की रगरग में नव जीवन का

संचार कर दिया। रण क्षेत्र से इस प्रकार भाग आने के बाद जब हाड़ी रानी ने उसे फटकार सुनाई होगी तो उस समय उस वीर के हृदय की क्या दशा हुई होगी यह शब्दों में चित्रित नहीं किया जा सकता। इसका एक गीत नीचे दिया जाता है—

राजा जी रण खेतांऊं जद भाग पाछा आया ओ
जोधाणे रे किल्ले फाटक बंद पाया—ओ
पाछा पधारो—
हां रे पाछा पधारो आरती उतारूं कोनी ओ
पाछा पधारो—
कट मरता राजाजी रण में हर्षित खूब होती ओ
अन्नदाता रो शीश ले गोद्यां में बळती ओ
जाती सरगां में—
हां रे जाती सरगां में अमर करती ओ
जाती सरगां में—
अन्नदाता कायरता एहड़ी थांने कोनी सोवे ओ
आपरी कायरता माथै रजवट रोवे ओ
पाछा पधारो—
अन्नदाता डरपो तो आवो वेस म्हारो लीजो ओ
आपरी तलवार लड़वा मनें दीजो ओ
पाछा पधारो—
हां रे पाछा पधारो चूंदड़ी सोहाग लाजे ओ
पाछा पधारो—

गीत का एक-एक शब्द जो सरल एवं स्वाभाविक है, इन-जेक्शन का काम करता है। रानी कहती है—"मैं कायर पति की नारी नहीं हूँ। मैंने वीर के हाथ अपना हाथ दिया है कायर को नहीं। महाराज! आपका शीश कटकर यदि यहाँ आता तो मैं उसे लेकर आग में अपना शरीर होम कर देती, पर हाय तुम तो रणक्षेत्र से भाग आए। मेरा सोहाग तुम्हारी कायरता से लज्जित हो रहा है। जाओ रण क्षेत्र में विजय प्राप्त कर आओ या वहीं सदा के हेतु सो जाओ। यदि रणक्षेत्र से तुम्हें भय लगता है तो अपनी तलवार मुझे दे दो और यह लँहगा और साड़ी तुम पहन लो। मैं अबला नहीं हूँ सबला हूँ। तुम देखना कि मेरे हाथ में कितना बल है।

इन्हीं भावनाओं का चित्र हमें इन दोहों में भी मिलता है।—

हेली राजमहल रा दीपक दो बुझाय।
उजासो किणने अंजसे पिव घर आया धाय॥

अर्थात्—"हे सखी! राजमहल के सारे दीपक बुझा दो। प्रकाश तो विजय श्री के सवाद पर ही अच्छा लगता है।" राज-स्थान की वीर नारियों का उज्ज्वल आदर्श रहा है कि कर्तव्य पालन के हेतु वे अपनी प्रिय से प्रिय वस्तु का भी त्याग कर सकती हैं।

हूँ खप जाती खग तळे हूँ कट जाती उण ठौड़।
बोटी बोटी बिखरती रेती रण राठौड़॥

वीरांगना हाड़ी रानी अपने पति से कहती हैं—"हे पति देव! यदि आपकी जगह मैं होती तो उसी जगह तलवार से कट जाती और मेरी बोटी बोटी रणक्षेत्र में बिखर जाती।

हाथ रोळी लाजगो पंथ पर आया भाज ।
फट जावे धरा धसूं मिल जावे गर लाग ॥

पतिदेव आज मेरा सिंदूर लज्जित हो रहा है । तुम कायरो की तरह भाग कर घर आए हो । हे धरती ! तुम इसी क्षण फट पड़ो मैं उसमें समाना चाहती हूँ ।

थे होता घर महळ हूं होती सरदार ।
हूँ मरत थे बळत नहीं दुखतो लार रो लार ॥

एक वीरांगना अपने कायर पति से कहती है,—हे पतिदेव ! तुम अगर मेरी जगह पर स्त्री होते और मैं पुरुष होती तो भी दुख ही रहता, क्योंकि मैं तो वीरांगना हूँ, अतः पुरुष होती तो रण में लड़ मरती । आप कायर हो, अतः रण से डरते हो । उस स्थिति में यदि आप स्त्री भी होते तो सतीव्रत धर्म का पालन नहीं कर पाते । कितना तीखा व्यंग्य है ?

पिव खग राखै कनै कदे न बावै कंत ।
भव पेले लोह चोरियो कांधे लियां फिरंत ॥

एक रमणी का पति कायर था । यह जलन वीरांगना के लिए असहनीय थी । वह चाहती थी कि किसी प्रकार पति में वीरता का अंकुर लहलहा उठे । वह कहती है—"पति देव, यह तलवार तुम मात्र दिखावे के लिये फिरते हो—तुमने वैरी पर इसका प्रहार नहीं किया । मालूम ऐसा होता है कि आपने पूर्व जन्म में लोहा चुरा लिया था अतः अब अपने कंधे पर लिए फिरते हो ।"

खगतो अरियां खोसली पिव घर आया भाज ।
जिण खूंटी खग टांकता ओठे टांको लाज ॥

हे पतिदेव ! तुम रण क्षेत्र से भाग आए, तुम्हारी तलवार दुश्मनों ने छीन ली। अब तुम्हारे पास वीरता की निशानी ही क्या है ? जिस खूंटी पर तलवार टांकते थे उस पर अपनी लाज टांको।

श्री नाथूसिंह जी महीयारीया इस युग के डिंगल के सर्वश्रेष्ठ कवि हैं। उनकी वीर सतसई अभी प्रकाशित हुई है। महीयारीय जी के हृदय मे वीरांगनाओं के प्रति एक विशेष मान है वीरांगना का जो ओजपूर्ण चित्र उनकी तूलिका से उतरा है व बहुत बेजोड़ है। साहित्यिक, सांस्कृतिक, सामाजिक एवं ऐतिहासि दृष्टि से उनका अपना मान है। वीर-वधू का वर्णन करते हु श्री महीयारीया कहते हैं :—

सीस रह्यो धड़ पर जितै धर नहँ दीधो कंत।
मो उमां अपछर वरै तौ जणणी लाजत॥

अपने वीर पति की वीरता का अभिनन्दन करते हु वीरांगना कहती है, कि जननी जन्म भूमि के रक्षार्थ मेरा व पति एक शूर वीर की तरह लड़ा। जब तक स्वांस रहा तब त वह अरि का मान-मर्दन करता रहा एव मातृ भूमि पर उसे बढ़ने दिया। पर मैं भी उस वीर की वीरांगना हूँ, मेरे हृ में भी वे ही वीरता के संस्कार हैं। मेरे पति वीरगति को प्र हुए हैं, वे स्वर्ग लोक जायेंगे। सुरपुर से अप्सराएँ उन स्वागत कर उन्हें वरेंगी। मेरे रहते ऐसा नहीं हो सकता। मु भी अपना कर्त्तव्य निभाना आता है। मैं पति का स्वागत करने हेतु अर्चना के रत्न कण लेकर पहले पहुँचूँगी—मैं धू-धू करती उस ज्वाला में स्नान कर अपने इस लौकिक नश्वर शरीर होम दूँगी।

को मन अँजसी हे नरां धरती रँगताँ सोच ।
अध को सीस खुलावणो सीस कटावण बोच ॥

वीरांगना पुरुष समाज को संबोधन करके कहती है कि, हे शूर वीरो अपनी खंग के पराक्रम से अरि मस्तक काटते हुए उनके रक्त की सरिता बहा कर इस धरती को रक्त रंजित करके क्या गर्व करते हो; पर बलिहारी है मेरी जो मैं अपने मस्तक के केस खोल कर ज्वलंत ज्वाल की लपटों में अपना शरीर होम देती हूँ। दुश्मन का सिर काटना अथवा स्वयं का सिर रणक्षेत्र में कटवाना सती होने से बहुत आसान है। वीरांगना का अपने शौर्य पर कितना गर्व है। वस्तुतः राजस्थान के इतिहास में वीरांगनाओं के बलिदान पुरुष समाज से कभी कम नहीं उतरे।

हेली रण दिस हालिया कुल रै मारग कंथ ।
काढाँ चढया जावणो पीहर घरवट पंथ ॥

राजस्थान के नारी जीवन का यह अमर आदर्श है कि वे अपने वीर पति के साथ सती होकर सती-व्रत धर्म का पालन करती है जो ससार के किसी भी इतिहास में ढूँढे नहीं मिलेगा। वीरांगना कर्त्तव्य की वेदी पर मरना जानती है। अपने प्रियतम को रणक्षेत्र में अपनी मातृभूमि के हेतु लड़ने जाते देख वह अपनी सखी को संबोधन करके कहती है कि हे सखी! मेरे पति देव मातृ-भूमि की रक्षार्थ रणक्षेत्र को राह चले हैं जो कि उनकी वंश मर्यादा का प्रतीक है, पर मैं भी अपने पीहर की रीत जानती हूँ—अर्थात् मेरे पीहर की लड़कियाँ सती होती है।

आजके सुधारवादी युग में यह प्रश्न हो सकता है कि यह सती प्रथा कहाँ तक मान्य है और यह भावना नारी जीवन को कहाँ तक उच्च स्तर पर लेजा सकती है? पर इतिहास के यथार्थवाद को

हम भुला नहीं सकते वह हमारी आने वाली पीढ़ियों के लिए पूजा का सामान है—वह उस समय का युग धर्म था। आज आवश्यकता है कि उन सुशुप्त पुनीत संस्कारों को पुनः पल्लवित कर हम देश के नारी जीवन को एक ऐसी प्रगति पर लगा दें जिस के द्वारा यह स्वतन्त्र भारत पूर्ण आलोकित हो कर विश्व का अग्रणी वने—हमारी मातायें और वहनें वीरांगनायें वनें।

धव सूंघो खग मोलवी दोसै रणरो तोल ।
सासू पोतां पालवा लीधो अजिया मोल ॥

वीरांगनायें दूरदर्शी होती हैं। एक वीर ने जव महगे दामों में तलवार मोल ली तो उस वीरांगना की सास ने एक वकरी। वीरांगना इस क्रय के विधान को समझ गई। अत. वह अपनी सखी से कहती है—"हे सखी! निकट भविष्य में युद्ध के वादल मडराने वाले हैं क्योंकि मेरे वीरपति ने महँगे दामों में तलवार खरीदी है और सास ने अपने पोतों को पालने के हेतु वकरी। मेरी सास जानती है कि उनका बेटा (मेरा पति) रण में संभवतः लड़ता लड़ता वीरगति को प्राप्त हो और मुझे सती व्रत धर्म का पालन करना पड़े। इस स्थिति मे बच्चों का लालन पालन वकरी के दूध से ही होगा।

हाड़ी भूखण वांटिया सुरपुर लिया न साथ ।
धड रा रंगमहलां दिया सिर रा रावत हाथ ॥

वीरांगना हाड़ी रानी और सलुम्बरधीश चुण्डावत की कहानी पर श्री मुकुल ने अपनी "सहनाणी" नामक कविता लिखी है। उसके भाव पक्ष के साथ २ सगीत पक्ष ने उनकी प्रसिद्धि में चार चाँद लगा दिए हैं। पर श्री महीयारीयाजी के उक्त भाव तो अपने ढंग

के अनूठे हैं। वीर वसुंधरा मेवाड़ की भूमि पर उस वीर कवि ने अपने जीवन के साठ वर्ष बिताए हैं और वहाँ के वीर ऐतिहासिक प्रसंगों के साथ उनकी काव्य प्रतिभा धुली हुई है। वीरांगना हाडी राणी के बलिदान को कवि ने बड़ी सुन्दर कल्पना से आँका है। इसका अर्थ है—"वीरांगना हाड़ी रानी ने अपने आभूषण बांटे और यह बटवारा इस धरती पर ही कर गई। सर के आभूषण तो अपने पति सलूम्बरधीश के पास पहुँचा दिए एवं धड़ के रंगमहल में पड़े रहे। यह बात प्रसिद्ध है कि रानी हाड़ी ने अपने पति को कर्तव्य विमुख होते देख प्रेम चिह्न माँगने पर अपना सिर उतार कर सेवक के हाथ भेज दिया था। कवि की प्रथम पंक्ति में गहरी अनुभूति है। वह रानी के त्याग की प्रतीक है। रानी को लौकिक यश की आवश्यकता नहीं थी वह तो वस्तुतः वीरांगना एवं प्रेमिका थी। अपने व्यक्तित्व का अमर यश इस धरती पर ही बांट गई। कितनी सुन्दर कल्पना है।

भाभी खांधो थेपड़ो इणखांधै कुल लाज।
देवर खांधो मेलियो नीला खांधै आज॥

वीर पति रणक्षेत्र में गया, अरिदल के प्रहारों से वह रक्त सना घर आया। उसकी गरदन अधिकतः कट गयी थी। वह लटक कर घोड़े की गर्दन पर लटक गई। घोड़ा सरपट दौड़ता जब वीर को लेकर घर आया तो वह अपनी जेठानी से कहती है:—"भाभी आज तुम्हारा देवर(मेरा पति) अपनी कुल-मर्यादा के अनुसार रण में वीर गति प्राप्त करके आया है। उनकी वीरता का मान करने के हेतु उनका कंधा थप थपाओ क्योंकि उनके कंधे पर वंश परम्परा की लाज सुरक्षित है। इस दोहे में एक भाव और है, वह है उस वीर के घोड़े के हक में। अश्वारोही रण में वीर गति

को प्राप्त हो गया—धन्य है इस स्वामि भक्त घोड़े को जो स्वय घायल होते हुए भी अपने स्वामी की लाश को मुझ तक लाया। अगर यह नहीं आता तो मैं अपने सतीव्रतधर्म का पालन कैसे कर सकती ? हे भाभी ! इस अश्व का कधा थपथपाओ क्योंकि उसके कधे पर कुल परम्परा की लाज टिकी हुई है—अर्थात् वह, वीर को, जिसने रण में अपना शौर्य दिखाया मरने पर सुरक्षित ले आया है।

कै गज हौदे नृप लियौ कै सिव गले सुमेर ।
विलम हुवै पिव सिरबिन्ना हेली लावां हेर ॥

देश की आन, मान और मर्यादा के हेतु जब वीर रण में कट मरते थे तो वीरांगनाओं के हृदय फूल उठते थे। वे भी सती व्रत धर्म का पालन करने को आकुल हो उठती थीं। अपने पति के रण मे बलि होने के पावन सदेश को सुनकर वीर रमणी की छाती गौरव से फूल उठी। वही अपनी सखी से कहती है कि हे सखी ! मेरे पति का सिर रणक्षेत्र से सेवक नहीं ला सके है। पतिदेव मेरी स्वर्ग में बाट जोहते होंगे। सती होने में विलव हो रहा है। अत: चलो रणक्षेत्र से वीर पति का सिर ढूंढ लावें। या तो महाराज ने मेरे पति के सिर को सभाल कर अपने पास हाथी के हौदे पर रख लिया होगा या फिर भगवान शकर ने मेरे पति के सिर को अपनी मुंडमाला में सुमेर बना लिया होगा।

टोप पहर सुत कहियो बहु सूरमी सिवाय ।
इण गूंथ्यो सिर खोलियौ संग बलेवा जाय ॥

अपने वीर पुत्र के शहीद होने पर अपनी लाड़ली बहू की शूर-वीरता की सास बड़ाई करती है। वह कहती है—"मेरा बेटा बहा-

दुर था, वह रण में लड़ते २ वीर गति को प्राप्त अवश्य हुआ पर रण में जाते समय उसने अपने सर की सुरक्षा के हेतु टोप पहन लिया था। धन्य है मेरी वीर वहू की वीरता कि आज वह अपने सिर को खोलकर सती होने जा रही है। सती प्रथा के समय यह रस्म थी कि सती, सती होने जाते समय अपने केश खोल देती थी।

सुत रो सिर सिव गल लियौ कटियो रणरै दीह ।
वहू चली अंप को रहो भसगो सीस चढ़ीह ॥

अपनी वीर वधु के लिए सास के हृदय में अधिक मान है। वह अपने पुत्र से भी वहू की वीरता का विशेष मान करती हुई कहती है कि—"मेरा वेटा रण में जूझार हुआ, उसके सिर को शकर ने अपनी मुंड माला में पिरोकर उसकी वीरता का मान किया पर मेरी वहु की वीरता उससे भी वढ़कर है।" सती होने पर उसकी वीरता विश्व के मस्तक पर चढ़ गई अर्थात विश्व श्रद्धायुक्त हृदय से उसे मस्तक झुकाता है।

महलां बिच वाल्ही सनै फिर वाल्ही विच प्राण ।
पिव लारां दरसण दिया धन भूमि समशाण ॥

वीरांगना सती होने के पहले श्मशान भूमि को संवोधन करती हुई कहती है—"हे श्मशान भूमि ! मैं तुम्हारी वंदना करती हूँ। वैभवमय राज महलों से भी आज तू मुझे अति प्रिय लग रही है। मेरे प्राणों से भी तू अधिक प्रिय है। आज तेरी गोदी में बैठकर मैं अपने कर्त्तव्य-परायण पति के साथ सतीव्रत धर्म का पालन कर रही हूँ।

सुत अरियाँ पीठ न दियै घरवट जगत सराय ।
अपछर नूं वर नहे पियै बेटी जिण घर जाय ॥

वीरांगना को अपने दूध पर एवं कोख पर नाज है। वह कहती है—"मेरी कोख से उत्पन्न हुए बेटा बेटी अपने कर्तव्य को छोड़ नहीं सकते। मेरा बेटा वीर है वह रण में दुश्मनों को पीठ नहीं दिखा सकता और मेरी बेटी शूरमी है वह जिस घर में जायेगी वहाँ अपने पति के साथ सती होकर अपनी यशकीर्ति को फैलायेगी। उसके होते मेरे दामाद को स्वर्ग की अप्सरायें वरण नहीं कर सकतीं।

सुत ओछी उमर मुओ वहु हुत सूत सिवाय ।
हाथ न मावै नारियल तो बलवाँ नूं जाय ॥

अपने वीर पुत्र और वीर बहू को श्रद्धायुक्त हृदय से श्रद्धांजलि अर्पित करती हुई माँ कहती है—"मेरा बेटा अभी किशोर ही था पर मातृभूमि की रक्षार्थ रण में लड़ता हुआ मारा गया। परन्तु धन्य है मेरी किशोरी बहू जिसके हाथ में नारियल नहीं समा रहा फिर भी सती होने जा रही है।

बहु सराणै नारियल पूत सराणै खग ।
सुरग सराणै दुहुँ लियौ गेह थयौ बड़ भाग ॥

बहू और पुत्र की वीरता के कारण स्वर्ग स्वय उनके घर उतर आया है। वीर बहू सती होने के लिए हमेशा नारियल सिराने लेकर सोती है और पुत्र तलवार। कौन जाने कब मातृभूमि पर विपदा के बादल छा जायें और कब दोनों को क्रमश. सती और वीरगति को प्राप्त होना पड़े। ये वीर माता

के भाव हैं। मां ऐसे पुत्र और वीरांगना वहू को पाकर धन्य भाग समझती है।

सुत पड़ियौ रण धर चिन्हा बहू अनबरै बीच।
महेंदी वाळा हथ वळै खग वाळा हथ बीच॥

अपनी वहु के सतीधर्म को प्रमुखता देती हुई वीर पुत्र की माता कहती है कि मेरा बेटा लड़ता २ रणक्षेत्र के बीच पड़ा, पर बलिहारी वीरांगना वहु की, कि वह लपलपाती आग की लपटों के मध्य बैठी हुई है—जिन हाथों में मेंहदी लगती है वे उन हाथों से सदा बढ़कर हैं जिन हाथों में तलवार रहती है।

नैडो वसै लुहारियो सुत हरखै खग मेल।
वहु नित देखे ऊमग आँगण तरु नारेल॥

वीर पुत्र को रणक्षेत्र अधिक प्यारा है। उसके पड़ोस में लुहार का घर है अतः वह अति प्रसन्न है क्योंकि उसे विश्वास है कि रण भेरी के बजते ही उसे लुहार के यहाँ से तलवार प्राप्त हो जायगी।

वीर पुत्र की वहू आंगन में बड़े नारियल के वृक्ष को देख-देख कर हर्षित होती है क्योंकि उसको सती हो जाने के समय नारियल लाने के हेतु अधिक देर नहीं करनी पडेगी। महियारीया जी की कविताओं में वीररस लबालब भरा हुआ है।
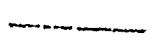
नारी सास के रूप में

नारी अपने मातृ रूप मे बेटी और बेटों को कर्त्तव्य-सजग रहने की जितनी शिक्षा देती है, उतनी वह अपने पुत्र की नव वधू में भी आदर्श संस्कार भरना नहीं भूलती। यदि सास के रूप में नारी का हाथ अपनी बहू को सफल गृहस्थिन के कर्त्तव्य जताने में कर्मशील नहीं होता तो उसका गृहलक्ष्मी होना सन्देहास्पद हो जाता है। सास और बहू के कलह से आज अगणित सद्-गृहस्थों का शान्तिमय जीवन अशान्ति की धूम्र जनित अग्नि मे सुलग रहा है, फलस्वरूप कितनी ही असभाव्य घटना-चिनगारियों को चटकते हुए भी देखा गया है। गृह-कलह-विहीन घर ही स्वर्ग होता है और एक आदर्श सास स्वर्ग-निर्माण की पूर्ण उत्तरदायिनी होती है। डिङ्गल-साहित्यकारों ने नारी का वर्णन अत्यन्त आदर्श पूर्ण तथा मनमोहक भावों में किया है —

जब बेटा बहू को ब्याह करके ले आता है तो सास स्वागत के गीत गाती है—

बेटो परणीजर कर आयो,
सासूजी वेण सुणावें यूं।
घर री लक्ष्मी घरां पधार्‌यो,
ब्याहण रो नाम बंधाइजे यूं।
बधायो बेटा ने पेल्या
बहु ने पुखावत बोली यूं।

थारो कंथो घणो शूरमो,

रणजीते वधाईजे यूँ ।

दिन दिवाली लिक्षमी पूजी,

लिछमी पूजत बोली यूँ ;

घर में यूँ दिवाली बेटा,

दीवला रोज झुपाईजे यूँ ।

दही कूंडियो गोळी मे

खायो फेरत बोली यूँ ।

रोज वलोणो करे जराँ,

गीत श्याम राँ गाइजे यूँ ।

बेटो जद रण जूझ मरे तो,

सतियाँ साथ सधाइजे यूँ ।

कितनी सुन्दर भावनायें हैं। सास अपनी वहू को सम्बोधन करके कहती है—"बेटी तू लक्ष्मी है, मैं तुम्हारा अपने घर में हृदय से स्वागत करती हूँ। तू अपनी माँ (मेरी समधिन) का नाम इस घर मे बढ़ायेगी। ऐसी मुझे आशा और विश्वास है। तेरा घराना उज्ज्वल है। तू उज्ज्वल घर से वहू बन कर आई है। हे गृह लक्ष्मी, मैं आज तुम्हारी आरती सँजो कर स्वागत करती हूँ। तेरा पति और मेरा बेटा महा शूर और वीर है। वह जब वैरी का मान-मर्दन करके आवे उस समय तुम उसका स्वागत करना। बेटी तू

घर की दीवाली है, तेरे ही सत्य, धर्म और कर्त्तव्य पालन के प्रकाश से यह आँगन जगमगा उठेगा।

घर में खूब गायें भैंसें हैं तू उनके दही को मंथन कर घी निकालना। प्रात: काल की मधु वेला में जब शीतल-मंद-सुगन्ध त्रिताप हारक समीर चल रही हो उस समय तू प्रातः स्मरणीय कुंजविहारी घनश्याम के सुमधुर गीत अपनी स्वर लहरी में उतारना, जिन्हें स्वर्णगत कर पड़ोस के जन-जीव आनन्द-विभोर हो उठें। यदि मेरा बेटा रण क्षेत्र में स्वदेश और कर्त्तव्य की वेदी पर शहीद हो जाय तो तू अपने सती व्रत धर्म का पालन करना।

पुत्र का रण-क्षेत्र में बलिदान हो गया—माता के मुख पर उदासी आगई, उसकी वहू ने सती व्रत धर्म का पालन करने के लिए नारियल माँगा। मातृ हृदय की स्वाभाविक ममता उन घड़ियों में जाग पड़ी। कुछ क्षणों के लिए सास के हाथ में नारियल थमा ही रह गया। उस स्थिति को देख कर वहू कहती है :—

बाबुल टीके भेळिया सोना रा नारेळ।
सासू देवण किम नटो इक सादो नारेळ॥

वहू के स्वरों में पतिव्रत धर्म पालन के हेतु कितनी उमग और विह्वलता है। सती होने का समय आया परन्तु जब नारियल देने के हेतु सास के हाथ न उठ सके तो कहने लगी—"माता जी मेरे पिता ने स्वर्गीयपति के टीके में सोने के नारियल भेजे थे, अब सती होने की घड़ियों में एक साधारण नारियल देते हुए क्यों हिचकिचाहट करती हो।

सती होने का समय आया। सती और सामन्त सभी (जूंझार) को अपनी अन्तिम श्रद्धांजली भेंट करने आये। उस समूह में

वहू की माँ भी थी। बेटे की माँ ने जब देखा कि वहू की माँ का हृदय रो रहा है तो उद्‌बोधन के रूप में वह समधिन के दूध की निम्न शब्दों में प्रशंसा करती है :—

सुत मरीयो बखतर पहर ब्याहण दूध सवाय।
झीणी मल मल ओढ़िया वहू बळवा को जाय॥

अर्थात् हे समधिन! मेरा बेटा शूरवीर था। मेरे दूध को पीकर वह रण क्षेत्र में बख्तर पहिनकर लड़ा, पर बलिहारी है तेरे दूध की, जो तेरी कोख से उत्पन्न हुई यह वहू अपने पति के साथ सती होने के लिये झीनी मल मल की साड़ी ओढ़कर आग की ज्वलंत झरारों में अपना शरीर होम रही है।

सुत री खग अळगी पड़ी धड़ पड़ियो जिण वेळ।
बहुरे हथ बलतां थको नह पडियो नारेळ॥

मेरे बेटे की तलवार तो उस समय हाथों से गिर गई जिस समय उसका धड़ धरती पर पड़ गया, पर बलिहारी है तुम्हारे दूध की कि तुम्हारी पुत्री के हाथों से अग्नि की झरारों से भी अन्त तक नारियल नहीं गिरा।

नारी पुत्री के रूप में

सौ गुण वारूं देखजे बेटी रा गुण दोय।
परणंतों पीछे रही बळवा आगे होय॥

माता ने जब अपनी पुत्री को सती होने के हेतु तैयार देखा तो वह बोल उठी—"मेरी वीरांगना पुत्री के अमर व्यक्तित्व के मात्र दो गुणों पर पुरुष समाज के सैकड़ों गुण वारे जा सकते हैं। जिस समय दामाद उससे व्याह करने आया था तब वह उसके पीछे गई थी, परन्तु आज वह सती होने के लिए अरथी के आगे जा रही है।

राजस्थान की मातायें अपने पुत्रों को ही नहीं वरन पुत्रियों को भी मरण के गीत सुनाकर शौर्य को सजग करती हैं।

"नानी थन हलराऊं सुणजे,
मायड़रा वैण सराईजे थूं।

हे बेटी मैं तुझे पलने में झुला रही हूँ। मेरी सीख, जो लोरियें गा-गा कर मैं ही तुझे दे रही हूँ, उसे भूल मत जाना।

तू उण जामण री जायोड़ी,
जिणरो दूध उजायो थूं।
भाग्या दुशमण रण छोड़ने,
थारे वीरे संख बजायो थूं॥

हे बेटी! तू उस माता की पुत्री है जिसका जाया महा बली है और जिसने कई युद्ध जीत कर मेरा मुख उज्ज्वल किया है। जब वह रण में शंखनाद करता है तो दुश्मन रण क्षेत्र छोड़ कर भाग खड़े होते हैं।

दीवो कर जगदंब रै आई,
जोत जळावत बोली यूँ—
पिव रै संगमे वळने बेटी,
सतिया नाम धराईजे थूँ ॥

माता ने कुल देवी के आगे दीपक जलाया। देवी से आशीर्वाद माँगा और पुत्री से कहा, हे बेटी! तू अपने पति की सेवा करना और जब ये रण में लड़ते २ मारे जायें तो सती व्रत धर्म का पालन करना। तुम्हारा भी नाम देवियों में हो, यही मेरी अन्तर अभिलाषा है।

थन झीलाड़ूं गंगाजळ में,
लाड लडावत बोली यूं।
देवळिये कूकू रा पगला,
बेटी बळ पुजवाईजे थूं॥

बच्ची को माता ने स्नान करवाया और कहा—"बेटी राजस्थान का पानी बड़ा गहरा पानी है। इसकी पावनता गंगाजल मे कम नहीं है। मुझे हर्ष तो उस समय होगा जब कि तू अपने पति के साथ भस्म होकर सती के रूप में इस देश में पूजी जायेगी! तेरे कुंकुम के पदचिह्नों को लोग पूजेंगे।

माथो गूंथ्यो कूकी रै,
चोटी गूंथत बोली यूँ।
पिव रै हेत मे सुणजे बेटी,
चोटी ज्यूं गुथ जाइजे थूँ॥

माँ ने बेटी की चोटी गूंथी और चोटी गूंथते हुए उसने पुत्री को सीख दी कि जिस प्रकार मैं तुम्हारी यह चोटी गूंथ रही हूँ उसी प्रकार तू अपने प्रियतम के प्रेम में गुथ जाना।

थनै चूरगो जीमाडूं,
गास्या देवत बोली यूं—
घरे पामणा आवै जद,
आख्यां री पलक बिछाईजे थूं ॥

हे बेटी। जिस प्रकार मैं तुझे चूरमा खिला रही हूँ उसी प्रकार तू भी अपनी सुसराल में घर आए महमान को देवता समझकर उनके चरणों के नीचे आंखों की पलक बिछाना।

धी हँसती जद होवती आंख्यां आगल आण।
बेटी ने वालो बळण सुत नै वाली खाग ॥

बेटी के सती होने का सवाद सुन कर माता का हृदय पुलकित हो गया। उसने सदेश वाहक को कहा कि मेरी पुत्री जब छोटी थी तब दीपक की ज्योति को देख कर हँसती थी और मेरा बेटा पिता की तलवार देखकर। उस समय मैं समझ गई थी कि मेरी पुत्री सती होगी और मेरा बेटा एक महान वीर योद्धा होगा। राजस्थान की पुत्रियों का उसके प्रांत के इतिहास में अपना अलग स्थान है। नारी जीवन का हर पहलू वीरता से कूट-कूट कर भरा पड़ा है जो विश्व की हर नारी के हेतु प्रेरणा की सामग्री है।

———

नारी बहिन के रूप में

डिंगल साहित्य में नारी जीवन का कोई पहलू वीरता से वेहीन नहीं मिलता। रक्षा-बंधन का त्यौहार राजस्थान में एक राष्ट्रीय रूप में मनाया जाता है। बहन अपने भाई से क्या उपहार मांगती है, वह निम्न दोहे से पूछिये:—

काटो बंधण देशरा या मन रो उद्गार।
हमें लाज हिन्दवाण री भुजां तिहारै भार॥

अर्थात्—हे भैया! रक्षाबंधन के पुनीत पर्व पर तुम यदि मुझे कोई उपहार देना ही चाहते हो तो मैं तुमसे मांग करती हूँ कि मातृभूमि के पैरों में पड़ी बेड़ियाँ काट दो। इस भारतवर्ष की लाज मेरे भैया तुम्हारी सबल भुजाओं पर है।

नह गेणा मांगूं गांठसूं खायां बैठी खार।
फिरंगी पाछा फेर दे आ मोटो उपहार॥

हे भैया! मुझे तुम्हारे गहनों की आवश्यकता नहीं है। आज इस देश पर अंग्रेजों का राज्य है। मेरे लाडले भैया! अंगरेजों को मातृभूमि से बाहर भगा दो। मै इसे सबसे बड़ा उपहार मानूंगी। राष्ट्रीयता से ओत-प्रोत बहिन की यह मांग किसे नहीं सुहाती?

नोट—अब भारत स्वतंत्र हो गया है। अंग्रेज तथा अन्य विदेशियों की दासता के समय के उपरोक्त दोहे यद्यपि अब कोई विशेष महत्व नही रखते, परन्तु हमें तो इनके भावो को देखना है।—

लेखक

सबळ बांधव गोरखा, जंग प्रिय जाट अहीर।
सिख सारा सोया कठै, गोविंद वाळा वीर॥

वहिन कहती है—"मेरे वंधु गोरखा, जाट, अहीर और सिख बड़े बहादुर है, पर आज कहाँ पर सो गए ?"

जरणी रै हित जूंझता हिन्दवाणी सिर मोड़,
केथ गया हाडा कूरम खगवाला राठौड़।

जीवण मरणो जाणता सोया किथ शीशोद,
भळकंता भाला कठै किथ मेवाड़ी मोद॥

यह देश वीरा की खान है। वहिन को खेद है कि उनके होते हुए भी आज प्यारी मातृभूमि भारतवर्ष गुलाम है। जब-जब स्वदेश पर विपदा की घटाएँ उमड आइं तब-तब क्षत्रियों ने अपना रक्त वहाया, पर आज इन सवटकालीन घड़ियों में वे हाड़े, कछवाहे, रणबाँके राठौर और मरण को जीवन मानने वाले मेवाड़ के सपूत शीशोदिये कहाँ सो गये ? कौन ऐसा कायर भाई होगा जो वहिन के मुख से मुखरित इस प्रकार के उद्वोधन को सुनकर हाथ म तलवार न उठाले।

भाभी रै रीजो अमर मैल नव खंडोह,
मन लाने दीजो अरे वैरी रो भंडोह।

हे भैया ! हमारी भाभी को तुम्हारा यह महल मुवारिक हो, परन्तु शत्रु का झडा तो छीन कर तुम मुझे ही ला देना—कारण कि उस झंडे पर मेरा अधिकार है।

जेक फिरे जठै तठै हिवड़े अबको हाल ,
बांधव छत्रगढ़ ऊपरां नहीं झंडो लाल ।

आज मेवाड़ की वीर भूमि पर मैं सब जगह अंगरेजी शासन का प्रतीक यूनियन जेक लहराता देख रही हूँ। युग युग तक स्वतन्त्रता पूर्वक लहराने वाला मेवाड़ी बलिदानों का प्रतीक वह लाल झंडा जिसकी स्वतन्त्रता के लिए हिन्दू सूर्य महाराणा प्रताप ने जंगलों की खाक छानी थी, आज चित्तौड़गढ़ पर नहीं फहराता है, हे बंधु ! आँखें खोलकर देखो, वह तो गुलामी का प्रतीक अंगरेजी झंडा है—मेवाड़ का लाल झंडा नहीं।

बाँधव देखो मरणरा गावे गंभीरी गीत ,
देश धरम रै कारणे रोज मरण री रीत ।

हे भैया ! चित्तौड़गढ़ की वह गंभीरी नदी उन शहीदों के अभिनन्दन गीत गा रही है जिन्होंने स्वतंत्रता के हेतु अपने बलिदान दिए हैं। इस मेवाड़ देश में तो स्वतन्त्रता एवं धर्म के हेतु मरने की वंश परम्परागत रीति है।

नारी विधवा के रूप में

मरुधरा पर भक्ति की सुरसुरी प्रवाहित कर राजस्थान को महान् गौरव प्रदान करने वाली भक्त शिरोमणि मां मीरां की भक्ति एव साहित्य सुधा से कौन ऐसा अभागा हिन्दी भाषा भाषी होगा, जो प्रभावित न हुआ हो। व्रज से विछुड़ी उस राधा ने अपने भोजराज रूपी कृष्ण को हृदय मदिर में स्थान देकर जो गीत गाए हैं वे भारतीय साहित्य के हृदय मंदिर में अपना सुरक्षित स्थान किये हुए हैं।

महारानी मीरा एक पतिव्रता नारी थीं। युवराज भोजराज ही उसके कृष्ण थे। उनकी मृत्यु के बाद वह उनकी स्मृति में पागल सी हो गईं। अपने विधवा जीवन में मीराँ ने अपने प्रियतम के विरह में जो गीत गाए वे राजस्थान के झोंपड़ों में बिखरे पड़े हैं।

राम मिलण रो घणो उमावो,
नित उठ जोऊँ बाटड़ियाँ।
दरसण बिन मोहि पल न सुहावै,
कळ न पड़त है आँखड़ियाँ।
तड़प तड़प के बहु दिन बीते,
पड़ी विरह की फाँसड़ियाँ।
अब तो बेगि दया कर साहिब,
मैं हूँ तेरी दासड़ियाँ।

नैंण दुखी दरसण नै तरसै,
नांभि न बैठे सांसड़ियाँ।
रात दिवस यह आरत मेरे,
कब हरि राखे पासड़ियाँ।
लगी लगन छूटण की नाही,
अब क्यों कीजे आटड़ियाँ।
मीराँ के प्रभु गिरधर नागर,
पूरो मन की आसड़ियाँ।

मीरां पति को ही परमेश्वर मानती थी। उसने भोजराज में ही गिरधर नागर को देखा था। पद की उक्त पंक्तियों में मीरां ने अपने प्रिय गिरधर का आह्वान किया है, मिलन को उसका हृदय अति विह्वल है—उसकी तड़पन, उसकी करुण पुकार कितने विह्वल शब्दों में हमारे सामने आई है। एक विधवा के रूप में मीरां ने समाज को आदर्श मार्ग दर्शन दिया एवं जिस संयम का उसने पालन कर अपने को अमर किया वह अनुकरण की सतत् सामग्री है। मीरां का साहित्य नारी जीवन की उज्ज्वल मणि है। भारत के कोने-कोने में हजारों नर-नारी बड़ी श्रद्धा एवं भक्ति से उन पदों को झूम झूम कर भगवान कृष्ण के चरणों में बैठकर गाते हैं

नारी जीवन में वैधव्य बड़ा ही करुण होता है। अपने पति के विरह में जो भाव उनके रुदन में निकलते हैं वे बड़े ही करुण होते हैं। नारी का विरह रुदन मैंने उतारने का प्रयास किया है—पंक्ति पंक्ति मे भावना है उसमें रस है हृदय को हिला देने वाली अद्वितीय शक्ति।

घोड़ा ऊंटां रा दातार ओ–
कांगां री करुण भालकां
कुण सांभळ ओ ॥

हे पति देव ! तुम दानवीर थे। अपने हाथों से न मालूम कितने घोड़े और ऊँट तुमने दान में दे दिये। नित रोज तुम्हारे द्वार पर दान लेने वालों की भीड़ रहती थी। मैं आज उन दान लेने वालों को क्या उत्तर दूँ जो मेरे स्वर में स्वर मिलाकर रो रहे हैं।

रावळी ओळू में केसरिया !
धरती बिळखी लागे ओ
रावळी ओळू कर कर थाको
मालकां घरे पधारो ओ !

आज प्रियतम तुम्हारे विरह में यह धरती उदास एवं मायूस दीख रही है। मैं तुम्हारी स्मृति कर-कर रो रही हूँ।

रावळा बिरद गाबा हाळा
हेला मारे–– ओ––।
थेलियां खोलया रोकड़ाँ री
अब कुण पुचकारे ओ ॥

प्रियतम ! तुम्हारा विरह गाने वाले आज तुम्हें रो रो कर याद करते है। तुम्हारे द्वार से कोई भी भूखा नहीं लौटता था। दान के हेतु तुम चाँदी बरसा देते थे, पर मेरे घनश्याम तुम्हारे

स्वर्गवास होने पर इन सभी लोगों को जो तुम्हारे विरह में तड़प रहे हैं कौन पुचकारेगा।

सती वेवा री रोक माल कां,
हमें जमवारो वलग्यो ओ।

हे पतिदेव ! सती की प्रथा तो बंद है अगर बन्द न होती तो मैं सती हो जाती—उसमें तो एक बार ही जलना होता है पर मेरे घनश्याम मैं जब तक जीवित रहूँगी तुम्हारे विरह में प्रतिपल जलूँगी।

महारानी अहिल्याबाई विधवा थी। उनके शासन-काल की प्रशंसा कौन नहीं करता। राजस्थान के एक कवि वहाँ पर गए थे। विधवा रानी की शासन-पद्धति की प्रशंसा करते हुए वे लिखते हैं—

रंगरे अहल्या राखिया,
चौपेरी पर चोर।
चोर चोरों री टोह करे,
पोह फूटंतो पोर॥
पोह फूटंतो पोर चैनरी वंशी वाजै।
रंग हो महाराणी क्रोड़ दीवाली राज विराजै॥

अर्थ है—रानी अहल्याबाई का राज्य धन्य है। उसकी बुद्धि की बलिहारी है। उसके राज्य में चोर पहरा देते हैं। (कहा जाता है कि रानी ने चोरों को ढूंढ कर पहरेदार बना दिया था जो चोरों की चालें जानते हैं) राज्य में शांति और प्रजा सुखी है। ऐसी महाराणी अहल्याबाई करोड़ दीवाली तक राज्य करे।

महारानी लक्ष्मीबाई झाँसी एक विधवा रानी थी। उस २० वर्ष की विधवा रानी ने जो कार्य किया वह भारत के इतिहास में सदा के लिए उसे अमर कर गया। रानी लक्ष्मीबाई का गीत आप पहले पढ़ चुके हैं।

नित उठ रोज भगवत नै भजणो,
विधवा रो धरम काम नै तजणो।
मानखो सधारणो सेवा करीनै,
हिया रा पाप ने रोय २ मजणो।
अे करतबड़ा कहीजे नारियां,
खमता धार हिया मे खमणो।

उक्त पंक्तियों में किसी एक प्राचीन लोक कवि ने विधवा के निम्न कर्तव्य बताए है.—

१—प्रात उठकर ईश्वर का भजन करना।
२—काम से दूर रहना।
३—मानव मात्र की सेवा करना।
४—क्षमा की मूर्ति बने रहना।

विरह और नारी

नारी जीवन का यह सबसे सरस पहलू है। मधुमिलन की उन प्रिय घड़ियों में जब दिल धड़कन से टकराता है, उस समय नारी के हृदय की क्या हालत होती है, यह एक विरह विह्वला नारी ही जानती है। रिमझिम करती हुई वर्षा में किसे अपने प्रियतम की याद नहीं आती—काम साकार हो उठता है। सुशुप्त यौवन अंगड़ाई लेकर जाग उठता है। जवानी के वे गीत किस के जीवन की मीठी याद बन कर नहीं रहते। नाचते हुए मोर, झरनों की कल-कल ध्वनि और वर्षा की बूंदें किसका हृदय आकर्षित नहीं करतीं? राजस्थान के कवियों ने शृंगार का वर्णन बड़े ही सुन्दर ढग से किया है। उमड़ी घटाओं को देख कर विरह व्यथिता नायिका तड़प-तड़प कर विरह के गीत गाती है।

सौ कोसां बिजली खिवे,
जिण सूं किसो सनेह।
मनरी तृष्णा जद मिटै,
आंगण बरसे मेह॥

हे सखी! मेरे प्रियतम आज विदेश मे हैं। उनके विरह में मैं तड़प रही हूं। रिमझिम टपकने वाली बूंदें मेरे हेतु शोले हैं। पति के विदेश में होने के कारण यह श्रावण और भादों मुझे सूखा लग रहा है। मेरा हृदय-श्रावण आज घर पर नहीं है। दूर चमकने वाली बिजली और पराये गाँव में बरसने वाले मेह से

कैसे सम्बन्ध हो सकता है ? अधरों की प्यास तो प्रिय ही मिटा सकते हैं।

सावण आंवण के गयो करग्यो कौल अनेक,
गिणता गिणता घिसगई आंगलियां री रेख।

दोहे में श्लेष है। नायक ने नायिका से निश्चित तिथि पर आने का वचन दिया था, पर वह अभी तक नहीं आया—श्रावण आया, तीज आई पर उसके हृदय का सावन नहीं आया—वह बाहर देखती ही रह गई। वह अपनी सखी से कहती है—हे सखी ! श्रावण आ गया पर हृदय-श्रावण अर्थात् प्रियतम नहीं आया। तुम सभी के प्रियतम घर पर है, पर मेरा दुर्भाग्य है कि वह निष्ठुर अपनी निश्चित तिथि पर भी नहीं आया। विरह में तड़पती नायिका ने अगुलियों पर दिन गिन-गिन कर बिताए, पर जब वह तिथि आई तो प्रियतम रूपी श्रावण नहीं था।

मेह बरसे मेड़ी चुवे भीजे गढ़ री भीत,
सासू थारो दीकरो पल पल आवे सीत।

वर्षा हो रही है और छत टूटी होने के कारण कहीं-कहीं से पानी टपक रहा है, गढ़ की दीवार भी भीग रही है। पर नायिका अपनी चित्रसारी में अकेली विरह में व्याकुल हो रही है। नारी स्वाभाविक लज्जा एव मर्यादावश अपनी व्याकुलता को किसी से कहने में असमर्थ है। अतः मन ही मन अपनी सास से कहती है—हे सास ! तुम्हारा सुपुत्र और मेरा प्रियतम मुझे बार-बार स्मरण आ रहा है। नायक की ओर से प्रियतमा को डिंगल कवियों ने अपने काव्य में, सन्देश भेजे हैं, वे भी नारी के प्रेम के प्रतीक है।

राजस्थान के तरुण कवि श्री नारायणसिंह भाटी ने महाकवि कालिदास के अमर ग्रन्थ मेघदूत का राजस्थानी में अनुवाद किया है। राजस्थान भारती के इस वीर पुत्र की नायक यक्ष द्वारा कहे गये सन्देश की पंक्तियाँ प्रसंग के समाधान में उपस्थित की जा सकती है।

प्रीतम मिलवा पंथ जावती कामणियाँ ने।
दरसाजे पंथ रात दमकती कामणिया में ॥

अर्थात्—प्रियतम से मिलने जाने वाली अभिसारिकाओं के पथ को हे मेघ बिजली की किरणों से आलोकित करना। इसी भावना का एक दोहा है—

रात अंधारी मेह झड़ी से री सीकलियां।
हाथ वसूटो साहिबा खवजो विजलियां ॥

अर्थात्—नीरव निशा और मेह की झड़ी लगी हुई हैं रास्ते में कीचड़ हो गया है। प्रियतम तुम्हारा हाथ छूट गया है—अंधेरे में दीख नहीं रहा है—हे मेघ! तुम एक बार बिजली चमकाओ ताकि अपने प्रिय का हाथ पुनः पकड़ सकूँ।

परणी पोढी सेज सुख सांप्रत लेती,
पेख उड़ी को मित सुवंती घटा अण चेती।
हरखी मोटे मोद वाथड़ी कंथ भरंती,
बिछड़ा जै मत मेघ सपनां सेण मिलंती।

यक्ष (प्रेमी) ने मेघ द्वारा अपनी प्रियतमा (यक्षिणी) को जो संदेश भेजा है वह कितना मधुर है। अर्थ है—मेरी प्रेयसी सुख की घोर निद्रा में सोई होगी, हे मेघ! मेरे मित्रवर! तुम कुछ देर देखते रहना। अपने सुख-विलासमय

सपनों का वह आनन्द ले रही होगी—अपने प्रिय को स्वप्न में वह मिल रही होगी, उस समय तू उसकी निद्रा को भग मत करना।

इसी प्रकार नायिक के प्रेम से वचित प्रेमी की भावनाओ का दिग्दर्शन करवाना अति आवश्यक समझता हूँ। डिंगल के कवि ने अपनी नायिका के स्मरण मे लिखा है—

वह बचपन री वेळ नह मोट्यारां डोकरां,
थारा म्हारा मेल मरीया पाछे मालती।

हे मालती (नायिका) न तो तुम-हम बचपन में, न जवानी में, न वृद्धावस्था मे ही मनचाही तमन्ना से मिल सके पर मुझे अपने और तेरे प्रेम पर विश्वास है। इस जन्म में नहीं तो उस जन्म मे सही—तुम्हारा हमारा मधुमिलन अवश्य होगा।

पग पग मचियो कीच झीरमर बरसे बादली,
बेहता सावण बीच मन मुरझावे मालती।

हे प्रेयसी। श्रावण आगया है—वर्षा हो रही है, पर जीवन में हरियाली नहीं है, जीवन तुम्हारे अभाव में मुरझा गया है।

दरद न होसी दूर या कर पद माथ रो,
हिवडा रो नासूर मरीया मिटसी मालती।

हे प्रेयसी। यह दर्द हाथ पैर या सिर का नहीं है—तुम्हारे विरह का नासूर मेरे हृदय पर हो गया है जो मरने पर ही जा सकता है।

ऊँची तो खिवै ढोला वीजळी,
नीची तो खिवै छै निवाण ।
ओजी ओ गोरी रा लसकारिया,
ओलूँडी लगाय र कोठे चाल्या जी ढोला ।
किण थाने चाळा राज चालिया जी,
किण ने दीनी सुगणी सीख जी ढोला ।
साथिड़ाँ चाळा म्हाने चालिया जी,
वीरे जी दीन्ही म्हाँने सीख श्रे गोरी ।
ओजी ओ गोरी रा लसकरिया,
ओलूँड़ी लगापर कोठे चाल्या जी ढोला ।
चढो श्रे तो रांधाँ ढोला लापसी,
रहो श्रे तो जिदवै रा भात जी ढोला ।
जीम चढाँला गोरी लापसी,
आय तो जीमाँला जिदवै रा भात श्रे गोरी ।
ओजी ओ गोरी रा लसकरिया,
ओलूँड़ी लगापर कोठे चाल्या जी ढोला ।
चढो श्रे तो ढालाँ ढोलियो,
रहो श्रे तो फुलड़ाँ री सेज जी ढोला ।
पोढ चढाँला गोरी ढोलिए,
आय तो पोढाँला फुलड़ाँ री सेज ।

ओ जी ओ गोरी रा लसकरिया,
ओलूंडीं लगा रे कोठे चाल्या जी ढोला।
चढो ने चढावो ढोला सिध करो,
काय तरसावो धण रो जीव जी ढोला।
जद पग मेल्यो ढोलै पागड़े,
डब डब भरिया छै नैण जी ढोलां।
आंसू तो पूंछै ढोलो पेंचसूं,
लीनी छै हिवड़े लगाय जी ढोला।
ओजी ओ गोरी रा लसकरिया,
ओलूंडीं लगा पर कोठे चाल्या जी।
थांरी ओलू ढोला म्हे करां,
म्हांरी तो करैय न कोय जी ढोला।
म्हांरी तो ओलू गोरीं थे करो,
थांरी तो करसी थांरी माय श्रे गोरी।
ओजी ओ गोरी रा लसकरिया,
ओलूंड़ी लगापर कोठे चाल्या जी ढोला।
ओ जी ओ गोरी रा लसकरिया,
कोय घड़ी दोय लस कर थामो जी ढोला।
मारो तो थाक्यो लसकर गोरी ना थमै,
म्हारे बावोजी रो थाक्यो लसकर थम सी श्रे गोरी।

ओजी ओ गोरी रा लसकरिया
ओलूँड़ीं लगया र कोठे चाल्या जी ढोला ।

नारी के दाम्पत्य जीवन में वियोग की घड़ियों का यह गीत; जिसे राजस्थान में ओलूँ कहते हैं; किस रसहीन हृदय को रसपूर्ण नहीं बनाता है। विदा की उन घड़ियों में जब कि पति अपने पिता की आज्ञा प्राप्त कर सेना सहित रण प्रयाण करता है तो प्रेयसी के हृदय में नारी जाति के हृदय की सुकुमार एवं कोमल भावनायें प्रेमवश हृदय में उत्तेजित होकर सुन्दर कपोलों पर गोल और गरम आँसुओं के रूप में उतर पड़ती हैं। विदा की उन घड़ियों में दो प्रेमियों के हृदय-प्रदेश में विरह व्यथा का कितना प्रवाह आता है यह भुक्त भोगी ही जानता है। नारी जीवन के दाम्पत्य पर्व को पहचानने में यदि किसी की आँखें निरक्षर न हों तो वह देखेगा कि नारी का विह्वल हृदय उक्त लोक गीत में बिछ गया है।

वर्षा की ऋतु कामिनी के हेतु संयोग के क्षणों में कितनी मधुमय होती है, यह मैं बताने की आवश्यकता नहीं समझता। पति उसी ऋतु में सेना के लिये विदा होता है तब वह कहती है, 'हे प्राणनाथ! आकाश के अंतःकरण से बिजली का प्रकाश फूट रहा है। इस मधुमय पावस ऋतु में तुम मुझे छोड़ कर कहाँ जा रहे हो?'

— प्रिये! मेरे साथियों का आग्रह है, मैं उसे टालकर कर्त्तव्य को विस्मृति के सागर में नहीं बहा सकता। मेरे भाई ने मुझे सीख दे दी है।

—प्राणेश्वर! यदि आप जा रहे हो तो लपसी बनाऊँ और यदि रहते हो तो बढ़िया जिनवा का भात।

—प्रिये ! मुझे जाना ही होगा। तुम्हारे हाथों से पकी लपसी खाकर विदा होंगे और आकर जिनवे का भात खाएँगे।

—नाथ ! यदि विदा होते हो तो चूंनडी ओढ़ूँ और रहो तो दक्षिणी चीर।

—प्रिये ! तुम्हारी चूनड़ी देखकर मैं चल दूंगा और जब आऊँगा तब जी भर तुम्हारा दक्षिणी चीर देखूँगा।

—नाथ ! यदि जाते हो तो पलंग बिछाऊँ, रहते हो तो सुमनों की सेज।

—प्रिये ! पलग पर सोकर विदा होंगे और आकर पुष्प शैया पर सोवेंगे।

—प्रियवर—जाना हो तो जाओ, मेरा हृदय तुम्हारे विरह में तडप २ कर रो रहा है—मुझे मत तरसाओ।

प्रियतम ने जब अपने घोड़े की रकाब में पैर डाला तो प्रियतमा का कलेजा मुँह को आ गया, आँखों में सावन छा गया। प्रियतम ने अपनी पगड़ी से उन आँसुओं को पोंछा और हृदय से लगाया। विदा के समय उन दो हृदयों की धड़कन एक दूसरे से क्या कहती है यह तो वे ही अनुभव कर सकते हैं।

प्रियतमा बोली—"हे प्राण प्यारे ! मैं तुम्हारी हर समय स्मृति करती हूँ स्मृति के सागर में गोते लगाती हूँ पर मेरी याद कोई नहीं करता।

प्रिये—कर्त्तव्य बडा है और कर्त्तव्य वेदी पर प्रेम का विस्मरण हो सकता है पर तुम्हारी याद तुम्हारी स्नेहमयी मां अवश्य करती है। इन पक्तियों के पीछे छिपी ये भावनायें कितनी मार्मिक हैं राजस्थान ने विरह और प्रणय की शीतल ज्वाला मे जलते हुए भी कर्तव्य विमुखता को अंगीकार नहीं किया यह उसकी लौकिक परम्परा का अमिट आदर्श है।

विह्वल होकर अंत में प्रिया ने कहा—"सेनापति केवल दो घड़ी के लिये अपना लश्कर ठहरालो।

—नहीं प्रिये ! ऐसा नहीं हो सकता मेरे पिताजी की आज्ञा से ही वैसा हो सकता है।

प्रियतमा के हृदय-पटल पर अमर स्नेह और स्मृति छोड़कर प्रियतम ने रण-क्षेत्र में प्रयाण किया। विनम्र आक्षेप का कितना मधुर उदाहरण है जिसे देखते ही बनता है।

विरह व्यथा से लबालब एक राजस्थान का लोक गीत, जो बहुत प्रसिद्ध है और नारी के विरह का पूर्ण परिचायक है, उपस्थित कर रहा हूँ। अपने प्रियतम को जिसका नाम नागजी है प्रेम के प्रति उपेक्षित एवं शिथिल रहने पर वह किस प्रकार उल्हाना देती है यह गीत की पंक्तियों से पूछा जा सकता है। वे स्वयं कहती सी दृष्टिगत होती हैं कि राजस्थान के लोक-साहित्य में विरह वर्णन बेजोड़ है।

"नाग जी ! घड़ी दोय घुडला थाभरे,
वैरी ! घूँघट री छँयाँ करूँ श्रो नागजी।
नाग जी तावड़ियो पापी, पडै हांरे,
वैरी घायल करदी तावड़े श्रो नागजी।
नागजी मन लोभी मन लालची रे,
वैरी मन चंचल मन श्रोर श्रो नागजी।
नागजी मन रे मते मन चालिये रे,
वैरी पलक पलक मन श्रोर श्रो नागजी।

नागजी तड़क तड़क मत तोड़ रे,
वैरी कतवारी रे तार ज्यूं ओ नागजी।
नागजी नागर बेलड़ी रे,
वैरी पसरै पण फूलै नहीं ओ नागजी।
नागजी सूतो खूंटी ताणरे,
वैरी बतलायो बोल्यो नी ओ नागजी।
नागजी मालपुवे को टुक रे,
वैरी जीम्या अडियो नै तालवे ओ नागजी।
नागजी अकबर घुडलो मोड रे,
वैरी मनड़े री बातां मै कहुँ रे नागजी।
नागजी भली निभाई प्रीत रे,
वैरी रैंण बिछोवो कर चल्यो ओ नागजी।
नागजी रमता एकज संग रे,
वैरी सब रग फीका तै कर्‌या ओ नागजी।
नागजी सोता एक पिलंग रे,
वैरी न्यारा न्यारा तै कर्‌या ओ नागजी।
नागजी टीको फीको पड़ गयो रे,
वैरी कजळो वह गयो नेण कोरे।"
नागजी होय अुमगी बादली रे,
वैरी नयणां बरसै मेह जी ओ नागजी।

नागजी माखणड़ो तो तें लियोरे,
वैरी रह गई खाटी छाछ रे श्रो नागजी ।
नागजी श्रकबर मुखड़े वोलरे,
वैरी श्रास निरासी मत करै श्रो नानजी ।

नारी हृदय की प्राकृतिक भावनाश्रों एवं विरह-व्यथा का जो
त्र हमें प्रस्तुत गीत में मिलता है वह श्रन्यत्र कठिन है ।
ठक का हृदय इन देहाती जीवन के प्रेम भरे क्षणों की
ति जो नारी के मुख से मुखरित है वह श्रपने प्रवाह के
थ वहा ले जाती है । नागजी की प्रियतमा कितने सुन्दर
पक भरे उल्हाने देती है । रूठे हुए प्रियतम को मनाने के हेतु
नका हृदय वारवार जिज्ञासू है । वह कहती है—"प्रियतम
पना घोड़ा दो घड़ी के हेतु ही सही, पर रोको । श्राकाश श्राग
ल रहा है । धूप बड़ी तेज है । मेरे हृदय ! तुम मत जाश्रो तुम
घूँघट की छाया कर दूँ ! तुम जिस मन के वश में होकर
पनी प्रियतमा से मुख मोड़ रहे हो वह तो लोभी है,
चल है, लालची है । उसके प्रभाव में श्राकर प्रेम को ठोकर न
, नागजी ! श्रपना प्रेम बहुत पुराना है । शैशव की ममता
री वे प्रेम भरी स्मृतियें जो तुम हम धरोहर की तरह हृदय में
छपाए हुए हैं, क्या भूल जायेंगे । जिस प्रकार कच्चे सूत के
ागे को कातने वाली स्त्री तार तोड़ फेंकती है उस प्रकार तुम न
रो मेरे नागजी ! तुम तो गहरी नींद में सो गए, क्या मेरी
कारें तुम्हारे हृदय की धड़कन से नहीं टकराती ? नागजी, यह
ेम कभी न मिटने वाली बीमारी है । नागजी, तुमने इस प्रेम
जाने का पूर्ण उपयोग किया, पर हाय ! श्राज तुम उस प्रेम को
ूल कर निर्मम बन रहे हो । तुम जा रहे हो, मेरा हृदय बैठ रहा

है पर निर्मम दो क्षण अपने घोड़े की वागडोर मोड़ लो, मैं तुम से वात कर लूँ। सुखमय जीवन के उन क्षणों को क्या तुम भूल गए जब तुम हम एक थे।

सरवर न्हावण पीवगयो साथींडा रै साथ।
के सरवर की मछलियाँ म्हारो लियो छै भंवर बिलमाय,
दासी कण विलमायो ऐरावत आयो नी अब तक बारणे।
चढ चढ दासी मेड़ियां आँख झरोखाँ माय।
जे तने दीसै आवतो म्हारो मद छकियो स्याम॥
दासी कण विलमायो ऐरावत आयो नी अब तक बारणे।
लीली घोडी हांसली अलवेलो असवार,
कड्याँ ए कटारी बाकड़ी सोरठड़ी तरवार।
दासी कण विलमायो ऐरावत आयोनी अब तक बारणे।

नारी पति को परमेश्वर मानती है। वह उसका कृष्ण और नायिका उसकी राधा है। राधा अपने कृष्ण के विरह में तडप रही है। हृदय मे हूक है, अपनी दासी को सम्बोधन कर वह कहती है–"हे दासी! मेरे प्रियतम अभी तक नहीं आए, उनके हेतु मुझे आशंका हो रही है। जिस प्रकार बृज बालायें सांवरे घनश्याम के विरह में व्याकुल हो उसके न आने पर नाना प्रकार की आशकायें करती थीं यही भाव उक्त गीत में मूलत है जो सीधे और सरल शब्दों में वड़े ही हृदयग्राही शब्दों में वहाँ की (राजस्थान) भाषा में व्यक्त किए गए हैं।

हे दासी! मेरा घनश्याम नहीं आया वह बाणों में त्रितापहारक समीर का आनन्द लूटने गया था पर वहाँ पर कोयल रहती है

उसकी पीयूष वर्षणीय वाणी के भुलावे में वह रम तो नहीं गया। प्रिय घनश्याम अपनी नीली घोड़ी पर सवार होकर सैर करने को गया था। पर उस जंगल मे सुन्दर आँखों वाली हिरणियाँ भो तो रहती हैं। कहीं घनश्याम उनकी आँखों की पलकों में तो अपने को नहीं भूल गये। हे स्वामी, मैं तुम्हारी प्रतिमा को आँखों में बसाकर तुम्हारे साथ एक ही शैया पर सोई थी। वह मीठा आलिंगन, वे मधुमय प्यार की बातें क्या वह सभी अरमानों का बसंत भरा संसार तुमने भुला दिया ? क्या यही प्रीति की रीति है कि तुम मुझे रात को अकेली छोड़कर निर्मोही की तरह चले गए ? मेरे हृदय रूपी आकाश मे तुम्हारी विरह व्यथा बादल बनकर गरज रही है और वही गोल गोल गरम गरम आँसू बनकर आंखों मे उतरती हुई शृंगार का काजल बहाकर कपोलों को काला कर रही है। प्यारे तुमने मेरे हृदय का मंथन किया। लोभी भौंरे तुमने इस सुमन का रस पिया। मंथन का नवनीत भी तुम खा गए, अब तो जीवन मे छाछ रह गई है। प्रियतम सोहाग बिन्दुकी का रग फीका पड गया है। तुम्हारे विरह में मैं तड़प-तड़प कर जीवन काट रही हूँ। कितना हृदय-स्पर्शी वर्णन है।

पतिदेव परदेश चले गए, नायिका विरह से व्यथित होकर गाती है—

थे तो जा बैठ्या पनामारू चाकरी,
धण रो काँग्री रे हवाल।
सुध बुध सारी भुलायदी,
दीनी मोय विसार।
बारा बरस तो बीत गया,
जोवत थारी बाट।

नित उठ काग उड़ावती,
परदेशी री नार।
बाबो छोड्यो जलमको,
छोड़ी सुगणी माय।
भाई छोड्या खेलता,
सात सख्याँ रो साथ।
सुरँगो पीवर छोड़ियो,
आई थारे लार।
थे मोय इण विद बिसारदी,
अब मेरो कूण हवाल।

विरहिणी नायिका के ये भाव सीधे और सरल हैं, उसमें उसका हृदय बोलता है—"प्रियतम परदेश चले गए पर प्रियतमा घर बैठी विरह के गीत गाती उसे उपालंभ देती है कि मैंने तुम्हारे हेतु अपने जन्मदाता पूज्य पिता जी को छोड़ दिया। स्नेहमयी परम पूज्या माँ को भी छोड आई। जिनके साथ आंगन में खेलती थी उन भाइयों को छोड़ा उन सखियों को छोड़ा। अपनी सब प्रिय वस्तुयें छोड़कर मैं तुम्हारे साथ चली आई पर निर्मम तुम मुझे भूल गये। बारह वर्ष से मैं तुम्हारी राह देख रही हूँ पर तुम न मालूम क्यों नहीं आए? तुम्हारे अभाव में मेरी क्या स्थिति होगी। तुम ही सोचो।"

नारी का यह स्वभाव है कि वह अपने प्रियतम को एक क्षण भी अपनी आँखों के आगे से दूर नहीं देखना चाहती। न वह दूसरी प्रेमिका के प्रभाव में अपने प्रियवर को आने ही देना

कद म्हारो पिवजी आवे,
जे तूं उड़कं सूण वतावे तो तेरो।
जलम जलम गुण गाहूँ रे कागा,
कद म्हारो मारुजी आवे।

काग को विरहिणी कहती है, हे कागा तू मुझे बता मेरे प्राणेश्वर घर कब लौटेंगे। अगर तू मुझे बताएगा तो मैं तुझे मीठा भोजन करवाऊँगी, खीर खांड खिलाऊँगी। तेरे पैरों मे घुँघरू बाँधूंगी, तेरे गले में हार पहनाऊँगी। अगर तू यह बता दे कि मेरा घनश्याम कब आएगा तो मैं सदा तेरा उपकार मानूँगी। कितना प्रेम है नारी के हृदय में।

पावस रित झड मंडियो चातक मोर उदास।
बीजलियां झबके जसा विरही अधक उदास॥

वर्षा ऋतु है। वर्षा की झड़ी लग रही है। मोर और पपैया हर्षित हैं, पर कवि श्री जसाजी के स्वरों में यह भाव है कि यह सब प्रकृति का शृंगार पति के विरह में व्याकुल नायिकाओं के हेतु असहनीय है।

अगम सगम नदी बहे नदिय न लागे नाव।
हिरणी हो हेलो दिऊँ आवजी प्रीतम आव॥

सरिता के हृदय-प्रदेश में बाढ आ गई है—नाव उसमें उतर नहीं सकती। मूसलाधार वर्षा में मेरे प्रियतम तुम्हारी यह नायिका नदी के किनारे खड़ी होकर हिरणी की तरह बुला रही है।

जे ढोला न आवियो काजलियां री तीज।
चमक मरेसी मारवण देख खिवंतां बीज॥

नायिका अपने प्रियतम से कहती है—"हे प्रियतम ! तुम यदि श्रावण की तीज पर घर न आए तो यह मारवण अर्थात् प्रेयसी आसमान की बिजली से चमक कर मर जायगी।" नारी जीवन का विरह कितना हृदयग्राही है।

पेच सुरंगी पागरा ढांके मतधर ढाल
काछी चढ़ आछी कहूँ हंजा भीजण हाल

ढोला अर्थात् प्रियतम ! वर्षा बरस रही है। घोड़े पै चढ़ो तुम्हारी सुरंग पाग के पेचे को ढाल से मत ढांको—इसका रंग वर्षा के पानी के साथ उतरने दो। अमर शत बलिदानों की प्रतीक उस वीर भाषा के कवियों ने शृंगार और वीर रस का कैसा अनुपम सामंजस्य किया है। राजस्थान में कहीं कहीं पर यह रीत है कि लोग अपने पूरे राजस्थानी शृंगार मे वर्षा का स्वागत करने जाते हैं और वर्षा रूपी सुन्दरी का स्वागत करते हैं।

चमकै दामण चहु दिसा मोर करे अलिमद्द।
मुरझ मुरझ प्यारी मरे सुण सुण कोयलसद्द ॥

चारों ओर बिजली चमक रही है। मोर नाच रहे हैं उन पर वर्षा मे मस्ती है पर कोयल की आवाज सुन २ कर नारी अपने प्रियतम के विरह में तड़प-तड़प कर मुरझा रही है।

अण घर हर अंबर भरर डंबर रूप अनेक।
दल मिल चालै साहिबा धण पण एका एक ॥

राजस्थान के साहित्यकार के उक्त शब्द तो चित्रपट जैसा चित्र हमारी आँखों के सामने उपस्थित करते हैं। आज का यह छाया-वाद राजस्थान के कवियों के विरह वर्णन के बहुत पीछे रह जाता है। नायिका अपने प्रियतम को जो परदेश है, स्मरण कर कहती

है "बादल गरज रहे हैं, आकाश बूंदें नहीं आँसू बरसा रहा है। इसके अनेक रूप मुझे अच्छे नहीं लग रहे हैं क्योंकि आज मैं अपनी चित्रसारी में बिलकुल अकेली हूँ।

मेघदूत की शैली पर श्री सुबोध कुमार अग्रवाल ने एक लघु काव्य लिखा है। राजस्थान की लोक भाषा में, जो वहाँ के जन साधारण द्वारा बोली जाती है, उन्होंने सावन में नारी के स्वाभाविक विरह का वर्णन किया है जो देखते ही बनता है :—

झिरमिर झिरमिर मेवलो बरसै,
गोरी तरसे महला तळै।
आज्यो जी म्हारा सजन सनेही,
सावणिये रा लौर गळै।
बोरंग चूनड़ भीजणलागी,
टप टप टप टप रस बरसै।
काग उड़ावै छाजै पर धण,
परदेशी रो पथ निरखै।
भायलड्यां मे रमग्यो पनजी,
घर थारी सुन्दर तरसै-आज्योजी॥

कितना सुन्दर विरह वर्णन है। कवि के भावों में राजस्थानी भाषा के इस कवि की उपयुक्त भावनाओं का सही हिन्दी अनुवाद अशक्य नहीं तो कठिन है। पंडित जवाहरलाल नेहरू ने संसदीय हिन्दी परिषद् के द्वितीय समारोह की अध्यक्षता करते हुए ठीक ही कहा था कि "भावों का युक्तियुक्त वर्णन अनुवाद के रूप में बहुत कम उतरता है।" फिर भी पाठकों को राजस्थान के वर्तमान

और प्राचीन कवियों की भावनाओं का परिचय हिन्दी प्रेमी जनता को देने का प्रयास किया गया है। रिम-झिम वर्षा हो रही है, पर नायिका अपने प्रियतम के अभाव में महलों में तड़प रही है। उसकी बहुरंगी साड़ी भीजने लगी है और रंगमय बूंदें नीचे टपक रही हैं। महल की छत पर चढ़ कर प्रियतमा अपने प्रेमी का आह्वान करती हुई काग उड़ा रही है—अर्थात् रह २ कर उस काग को उड़ा कर प्रियतम के आने के संभावनात्मक वरदान मांगती है। नारी के हृदय के स्वाभाविक संदेह को कवि ने बड़े ही युक्तियुक्त ढंग से चित्रित किया है। "भायलड्यॉ में रसग्यो पनजी घर थांरी सुन्दर तरसे" पनजी उसके नायक का नाम है, अतः उसे संबोधन करते हुए वह कहती है, हे पनजी तुम तो परदेश में अपनी नव प्रेमिकाओं के झुरमुट में मुझे विस्मृत कर गए हो। पर यहाँ तो विरह की ज्वाला धधक रही है तुम्हारी यह सुन्दरी घर में तरस रही है।

वर्षा ऋतु नारी के जीवन की वसंत है—यदि उसका प्रियतम उसकी सेज पर हो। पावस का विरह बड़ी व्यथा वाला होता है। श्री महादान महड्डू रचित निम्न डिंगल गीत में आप विरह का सजीव रूप पायेंगे।

बादल चहुं तरफ मेह बरसायो,
तकियों आय अतन तन तायो।
सहिए हिये नेह सरसायो,
छकियो जाय देसावर छायो॥
घण चौतरफ घटा घुमड़ी रै,
केकी मसत होय किलकारैं।

सुजन्म अवन रेलियो सारैं,
पण आली कद पीव पधारैं ॥
विपन सघन लपटी तर वेली,
सावण रमजे तीज सहेली ।
अवै रहियो किम जाय अकेली,
हमै कंथ आसी कद हेली ॥
दपट जीव लग रही उदासी.
वण अत वाढी विरह वियासी ।
देखूँ बाट अये सुण दासी,
अब कहजै बालम कद आसी ॥

धीर विचार किसी विध धरजे,
वाताँ मे किण भाँत विसरजे ।
भोली ये क्यूँ कर दिन भरजे,
साजन बिना पलक नह सरजे ॥
सेजाँ जाय निसंक पत सोसी,
जो नज रूप नजर भर होसी ।
गात भीड़ उरमे सरगोसी,
हेली वो मोसर कद होसी ॥
पैली आप अधर रस पासी,
कर ग्रह गाढ उरज मरु कासी ।

बाजाँ नूपुर स्रवण वजासी,
आली जे को घड़ी कद होसी ॥
इक टक रहूँ नरख नैणासूँ,
वोह मनवार करूँ वैणाँ सूँ।
दल वादल सो सुख देणा सूँ,
सहचर वेग मळा सैणां सूँ ॥
कोकर वात सताव करानैं,
सरब समायूं भूखण सोनैं।
मो मत आण मळावो मांनैं,
तो दूं लाख वधाई तोनैं ॥

अतन=कामदेव, तायो=तपा हुआ, सहिएहिये=सखि के हृदय में, छकियो=मदमस्त प्रियतम, केकी=मोर, रेलियो=फैला हुआ, हेली=सहेली, मोसर=मरने के बाद जो बारहवें दिन भोजन होता है, भूखण=गहने।

प्रसग वश मुझे राजस्थान में गाया जाने वाला गाना स्मरण हो आया। प्रियतम को संबोधन करके उस गाने को प्रारम्भ किया गया है जिसे धन पसरी कहते हैं। धनपसरी का अर्थ संभाव्यतः साड़ी से है जिसे राजस्थान में ओढनी के रूप में ओढ़ते हैं।

पिया अजमेर जाज्योजी वठा सूं लाज्यो धन पसरी।
गोरी ओढ कै वतावो जी कसी तो लावां धन पसरी ॥
पिया कसी वध ओढूं जी सासरिये मे सासू लटै।
गोरी पीयर चालोजी वठै तो ओढ़ो धन पसरी ॥

पिया कसो वध श्रोढूं जी पीयरियै में सरम घणी।
गोरी सेजाँ चालोजी वठै तो श्रोढ़ो धनपसरी।।
पिया श्रोढ़ के श्राई जी सिला रै माथै रपट पड़ी।
पिया श्रठै मत नालोजी नजर थाँरी भूंडी लगी।।

देहाती जीवन के इस गाने में प्रियतम और प्रियतमा का वार्तालाप है। इसमे किन सुन्दर मर्यादात्मक ढंग से लोक साहित्य का सुन्दर वर्णन है। राजस्थान का नारी समाज जब अपनी पीयूष वर्षणीय वाणी में स्वर लहरी छेड़ती हैं तो देखते ही बनता है।

सावण की तीज राजस्थानी नारी जीवन का महत्व-पूर्ण त्यौहार है। अपने प्रियतम के साथ उस त्यौहार को मनाने में वे अति आनन्द का अनुभव करती हैं। सुख विलास की करुणा भरी घड़ियां में एक ओर वे आनन्द विभोर हो उठती हैं तो प्रियतम के अभाव में विरह व्यथित नारी-समाज के हृदय के टुकडे हो जाते हैं। उस महत्व-पूर्ण त्यौहार पर कवि श्री नारायणसिंह की ये पक्तियां याद आ जाती हैं।

श्राई साँवणियां री तीज।

हंसै है धरती रो सोहाग,
श्रोढियां रंग बिरंगी छींट।

लुलकती बाजरियाँ नै छेड़,
झुकै है टाल पवनियो मीट।
छोटा मोटा श्राज घरा रां हंसै झलेरां बीज—
श्राई साँवणिया री तीज।

हिडोलै हीडै जोवण आज,
क चिलकै चूंदड़ियाँरातार।
लचकती डालयाँ में जमजाय,
झणकती पायल सी झनकार।
लाड कोड में हियो अचप लो आज भयो है धीज,
आई सांवणियाँ री तीज।
भागती नदियाँ समदर आप,
क आओ धरती नै झुक जाय।
फूल री पाँखड़ियाँ,
भोळा भवराँ नै भरमाय।
आज मिळण री वाट मोकळा मिळग्या मोद मरीज.
आई साँवणियाँ री तीज।

तीज के मेले पर नारी उन्माद का वर्णन डिंगल साहित्य में भरा पड़ा है एक मीठी एवं दर्द भरी कसक है प्रसंगवश रावत सारस्वत की कुछ पंक्तियाँ प्रस्तुत हैं:—

तीज रळी तीजणियाँ हीडै,
फूल कळी पद मणियां हीडै।
बादल वरणी ओढणियाँ में,
बजरागाँ बीजलियाँ हीडै।
हीडै विरछाँ री डालांपर,
हीडै सरवर री पालांपर।

हीडे गीतां रे वेणां पर,
हीडे रसियां रै नेणां पर।

गोरी पातलड़ी म्रिगनेणी,
वा झूलै जाणै छवि झूलै।
चाँद किरण रै पालणियै मे,
जग मोहणी चाँदणी झूलै।

वा झूलै जद मेलो झूलै,
झूलै विरछ डूगरी झूलै।
आओ अरवादलिया झूलै,
धर झूलै समलो जग झूलै।

मस्ती, यौवन एवं शृंगार का कितना सजीव वर्णन है। प्रकृति उसमें नारी की उन्हीं सज्जाओं के साथ विहँसती दृष्टिगत होती है।

जैसी मां वैसे बेटे

छत्रपति शिवाजी ने औरंगजेब की दानवीय प्रवृत्तियों से लोहा लिया था। धर्म के नाम पर जिस समय मुगल सम्राट औरंगजेब ने समस्त अमुस्लिमों पर अन्याय की तलवार उठाई तो उस समय उसके समक्ष कोई तलवार उठाने वाला था तो छत्रपति शिवाजी। शिवाजी समस्त भारत के पूज्य पुरुष हैं। शिवाजी की मां जीजा बाई ने ही शिवाजी को शिवाजी बनाया। उन्होंने उनके हृदय में राष्ट्र प्रेम के पुनीत संस्कार कूट-कूट कर भरे। अगर शिवाजी की जीजा बाई जैसी मां न होती तो संभवतः वह कायर निकलता। जीजा बाई ने अपनी कोख से शिवाजी जैसा बेटा देकर उस समय हिन्दू समाज का बड़ा भारी उपकार किया—हिन्दुओं के सर पर चोटी रह गई।

ती लख धन रे तिया बेटो जिणरो बोस।

आथड़ियो अंगरेजसूं ग्रौर भुलायो होस॥

तरुण हृदय-सम्राट स्वर्गीय नेताजी को राष्ट्र कभी नहीं भुला सकता। उनकी माता की कोख का अभिनन्दन करते हुए डिंगल साहित्यकार ने लिखा है कि एक नहीं तीन लाख बार धन्य है उस नारी को जिसने सुभाष को अपनी कोख से जन्म दिया। वही सुभाष जिसने कहा था "तुम मुझे खून दो मैं तुम्हें आजादी दूंगा" अंगरेजों की आंधी में सारा देश डोल रहा था उस समय माता के उस सपूत बेटे ने आजाद हिंद सेना का निर्माण किया—अपना खून देकर जिसने इस हिन्दुस्तान को आजादी दी और जब आजादी की घड़ियां आईं तो एक निस्वार्थ सन्यासी की तरह अन्तरध्यान हो गया। अंगरेजों के पैर उखड़ गए।

खायो मायड़ भगतरी अजमो अणमोलोह।
बंधण सांचो कारणे फांसीरो झोलोह ॥

आजादी की आधार शिला उन क्रांतिकारी नवयुवकों पर टिकी हुई है जिन्होंने अङ्गरेजों की फाँसी को हँसते २ स्वीकार किया। पंजाब प्रदेश का वह सपूत शहीदे आजम भगतसिंह राष्ट्र के महान् पुरुषों में से एक है। डिंगल साहित्यकार ने वीर भगत सिंह के हेतु लिखा है कि उस वीर की माता ने अमूल्य अजवाईन खाई थी। उस माँ के दूध में एक चमत्कार था। भगतसिंह उस दूध को पीकर बड़ा हुआ। जीवन की सभी साध्वि साधों को उसने स्वदेश की वेदी पर कुर्बान कर दिया। जिस देश में ऐसी वीर मातायें हैं वहाँ वीर बेटे पैदा हों तो क्या विस्मय ?

पायो दूधड़ प्रेम सूँ करम धण कर कोड।
माहनिया महाराज रो होयं न दूजो होड़ ॥

राष्ट्र-पिता पूज्य महात्मा गाँधी का राष्ट्र पर कितना ऋण है यह बताना व्यर्थ है। पर उससे भी अधिक ऋण उस देवी का है जिसने गुलाम भारत के उद्धार के लिए महात्मा गाँधी जैसा बेटा दिया। कर्मचन्द की नारी ने बड़े प्रेम और शांति से उसे दूध पिलाया। मानवता का वह अवतार इस ससार में अपने चिर-सस्मरण छोड़ गया। डिंगल कवि कहता है कि गांधी जी की होड़ करने वाला अभी कोई पैदा नहीं हुआ ? उनकी माता को धन्य है जिसने महात्मा गांधी सा बेटा इस राष्ट्र को दिया।

धनवांरी धीयारड़ी धन धरां वा नार।
जाणे सारो जगतजा जणियोपूत जवार ॥

स्वर्गीय स्वरूप रानी की कोख का अभिनंदन करते हुए कवि लिखता है कि वह घर धन्य है जिस घर में स्वरूप रानी जैसी लड़की पैदा हुई। वह पुरुष धन्य है जिसने उसे पत्नी के रूप में पाया। जिस नारी ने हमें पंडित जवाहरलाल जैसा बेटा दिया वह कोख धन्य है। आज उस महान प्रतिभा को न केवल भारत-वर्ष ही जानता है वरन् समस्त विश्व उसकी बात ध्यान से सुनता है। शांति के संदेश वाहक श्री नेहरू पर आज भारतमाता को गर्व है।

मां भारत जाया जिका मोटा मन महेन्द्र।
रंग हो थने राष्ट्रपति शत दिवस राजेन्द्र॥

भारतमाता हीरों की खान है। इस माता के बेटे सभी रत्न होते हैं। उनका हृदय मक्खन सा कोमल एवं सागर सा विशाल होता है। हाथां में यश और स्वभाव में माखन मिश्री होती है। राष्ट्रपति डाक्टर राजेन्द्रप्रसाद स्वतन्त्र भारत के राष्ट्र-पति हैं उनमें ये सभी गुण विद्यमान हैं। ऐसे बेटों का कवि बहुत बहुत धन्यवाद करता है।

डिंगल साहित्य कारों ने नारी को जो मान दिया है वह नारी समाज के हेतु एक स्वर्णिम प्रकरण है। हमारे देश की बच्चियें कल मातायें बनेंगी। भारत आज स्वतन्त्र है, विश्व में आज इसने अपना बहुत बड़ा स्थान सुरक्षित कर लिया है। देश के उत्थान में नारी समाज का बड़ा हाथ होता है। एक हाथ से ताली नहीं बजती। मातायें ही राष्ट्र की सच्ची मातायें हैं—यदि हमारा नारी समाज अपने को पहचान कर उस योग्यता को प्राप्त कर सका, जिसके अभिनंदन में यह सब लिखा गया है। भगवान करे हमारे देश में सती सीता, सावित्री, पद्मिनी, कृष्णा और

लक्ष्मीबाई जैसी नारियाँ पैदा हों, जिनकी उज्ज्वल कोख से एक नहीं अनेक महापुरुष पैदा होकर देश को परम वैभव तक ले जायें। भारत हर दृष्टि से समर्थ है, उसकी अपनी परम्परा है। उसी भारतीय संस्कृति ने उस महान पद पर युगों से आसीन किया है। पाश्चात्य सभ्यता के बादलों को हम प्रबल प्रभंजन बन कर छिन्न-भिन्न कर दें ईश्वर से मेरी यही प्रार्थना है।